प्रायश्चित्त-विधान



पायच्छित्तकरणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पायच्छित्तकरणेणं पावकम्म-विसोहिं जणयइ, निरइयारे यावि भवइ। सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ, आयारं च आयारफलं च आराहेइ ॥

—भगवान महावीर



—मुनि त्रिलोक

एवं नयभेएण पाणाइवायादिगे उ अइयारे ।
निरवेक्खाण मणेवि पच्छितियरेसि उभएण ॥

—व्यवहार सूत्र उद्देश १०   भाष्य गाथा १६५ ॥

जिन-कल्पी मन के अतिचारों का भी प्रायश्चित्त लेते हैं जब कि स्थविर-कल्पी केवल वचन और काया के अतिचारों का ॥



प्रायश्चित्त की तीन श्रेणियां—

(१) आत्म-ग्लानि ।
(२) दूसरी बार पाप न करने का निश्चय ।
(३) आत्म-शुद्धि ॥

—उम्मेद



पाप की विशुद्धि के लिये शास्त्रीय-विधि अनुसार किया गया अनुष्ठान प्रायश्चित्त कहलाता है ॥

आत्म-विशुद्धि-कारक-

प्रायश्चित्त-विधान

लेखक

भारतीय वर्धमान श्रमण संघ के आचार्य पूज्य
श्री आत्माराम जी महाराज के पट्टशिष्य युग-
स्रष्टा स्वर्गवासी गुरुदेव श्री खज़ानचन्द जी
महाराज के सुशिष्य आत्मनिधि श्री
स्वामी त्रिलोकचन्द्र जी महाराज।



प्रकाशक

वेदप्रकाश विजयकुमार जैन
नवांशहर द्वाबा (पंजाब)

प्रकाशन-व्यय-दायक :—

गुप्तदानी महाशय।

वीर सम्वत् २४८६ वि. २०१७

ई. १९६०

अप्रैल वीर जयन्ती

मुद्रक :—

श्री देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर,
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान प्रेस,
साधुआश्रम, होशियारपुर।

प्रास्ताविक कथन

सामाजिक-जीवन की गाड़ी को ठीक रूप से चलाने के लिये दो मार्ग हैं—आगार धर्म और अणगार धर्म—गृहस्थ धर्म और साधु धर्म—राजनीति और धर्म-नीति।

जिस समय मनुष्य का सामाजिक रूप नहीं होता (युगल-समय होता है) तो उस समय न राजनीति होती है और न ही धर्मनीति। जब समाज में दोष बढ़ते हैं तो फिर सामाजिक-रूप होना प्रारम्भ हो जाता है। वर्ग की स्थापना होती है और उस का मुखिया 'कुलकर' कहलाता है। वह मुखिया दोषी को 'हकार' की दण्डनीति पर चलाता है। आगे जाकर और दोष बढ़ते हैं तो 'मकार' की दण्डनीति प्रवृत्त होती है, इस प्रकार दोषों के बढ़ते हुए क्रम से 'धिक्कार' नीति, 'परिभाष' नीति, 'मण्डल-बन्ध'=नज़र-बन्दी 'चारए'=क़ैद और 'छविछेद'=अंगछेद की नीतिएं प्रवृत्त होती हैं।* ये राजनीति की नीतिएं हैं।

राजनीति स्थापित होने पर धर्मनीति स्थापित होती है। यह भी एक सामाजिक रूप है परन्तु अणगार-धर्म पर चलने वाले साधकों का। इस सामाजिक संगठन की दस नीतिएं होती हैं। ये नीतिएं, दण्डनीतिएं नहीं, अपितु प्रायश्चित्त-नीतिएं हैं। दंड, बलात् लिया जाता है और प्रायश्चित्त, सहर्ष—स्वयं की इच्छापूर्वक समझ कर ग्रहण किया जाता है, साधु-पुरुषों की नीतिएं जो हुईं, यहां बलात्—दबाव देकर काम करवाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, हां! यदि वह दोषी, दोष को

---

* सत्तविहा दंडनीई पण्णत्ता तं जहा—हक्कारे १, मक्कारे २, धिक्कारे ३, परिभासे ४, मंडलबंधे ५, चारए ६, छविच्छेदे ७॥ —ठाणांग सूत्र ७।२२॥

किसी प्रकार समझे ही नही और समझ कर उसका प्रायश्चित्त ग्रहण ही न करे तो उससे सम्बन्ध-विच्छेद, असहयोग (Non Co-operation) कर लिया जाता है और बस ।

प्रायश्चित्त नीति में सर्वप्रथम आलोचना होती है अर्थात् अपने किये हुए कार्यों को प्रकट करना और उस में लगे हुए दोषो को स्वीकार करना, इसके पश्चात् लगे दोषों को बुरा कहना (मिथ्यादुष्कृत देना), तदनन्तर उन्हे बुरा समझना (निन्दा) और उनसे घृणा करनी (गर्हा), तब उस पापकर्म से निवृत्त होना (वि-उट्टन), उसमें रहे अतिचारों की विशुद्धि करना (विशोधन), तथा आगे के लिये उस पाप-कर्म को न करने का अपने मन मे दृढ-सङ्कल्प धारण करना और किये हुए पाप-कर्म का श्रद्धापूर्वक श्रुतानुसार यथार्थ प्रायश्चित्त ग्रहण करके उसे शीघ्रतया पूरा करना होता है।*

यदि इस प्रकार विधि से प्रायश्चित्त किया गया है तब तो वह प्रायश्चित्त है, नही तो वह प्रायश्चित्त न होकर दण्ड ही कहलाएगा, जो कि देने अथवा लेने वाले साधु-जनों को, अणगारो को समुचित नही । यदि ऐसा किया ही जाता है तो यह धर्म-नीति नही, यह तो अणगार-धर्म से गिरावट की राजनीति बन गई क्योंकि दण्ड तो राजनीति मे होता है धर्म-नीति मे नहीं । धर्म-नीति में तो उपरोक्त विधि से प्रायश्चित्त होता है जोकि उसकी आत्मा को विशुद्ध बनाता है ॥

विषय-सूची





संवर-विणिज्जराओ मोक्खस्स पहो, तवो पहो तासिं ।
तवसो य पहाणंगं पच्छित्तं, जं च नाणस्स ॥
सारो चरणं, तस्स वि नेव्वाणं, चरण-सोहणत्थं च ।
पच्छित्तं, तेण तयं नेयं मोक्खत्थिणाऽवस्सं ॥



णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

प्रायश्चित्त-विधान

एक पथिक, पथ में कितनी सावधानी से चले, कहीं-न-कहीं उसे कंकर कांटा आदि लग ही जाते हैं। इसी प्रकार एक साधना करने वाला साधक, कितनी सावधानी से साधना-पथ में अपने कदम बढ़ाए, उससे कभी-न-कभी कहीं भूल हो जाना स्वाभाविक है। भूल हो जाना तो साधारण बात है परन्तु उस भूल को स्वयं जान लेना अथवा किसी दूसरे द्वारा बताए जाने पर उसे समझ लेना और स्वीकार करके प्रायश्चित द्वारा उसे शुद्ध कर लेना एक महत्त्व-पूर्ण बात है।

कोई भी भूल हो, प्रायश्चित्त के विना शुद्ध नहीं हो पाती। चाहे अपवाद-मार्ग का ही दोष क्यों न हो, उसका भी प्रायश्चित्त लेना होता है। यह माना कि अपवाद-मार्ग में जो दोष सेवन होता है उसमें राग-द्वेष की मात्रा अत्यल्प होती है परन्तु वीर्य-आचार के दोष तो उसमें स्पष्ट दिखाई दे ही जाते हैं और असावधानी के दोषों की प्रवल सम्भावना वहां विद्यमान होती है, जिस कारण इन सब का उसे प्रायश्चित्त लेना अत्यावश्यक है।

उदाहरणतया चिकित्सा कराना अपवाद-मार्ग है परन्तु साहसी साधक रोग आने पर भी औषधोपचार नहीं कराता यह उत्सर्ग-मार्ग है—'एवं खु तस्स सामण्णं जं न कुज्जा न कारवे'—उत्तराध्ययन सूत्र २।३३॥ पर साहस एवं धैर्य की कमी के कारण अपवाद-मार्ग में एक साधक सावधानी के

साथ यत्नापूर्वक चिकित्सा करवा सकता है ऐसा तभी तो हुआ जब कि उस मे वीर्याचार की कमी हुई; तथा चिकित्सा कराते कही-न-कही असावधानी होना भी सम्भव है जिस मे चारित्राचार के दोष भी लग जाते है।

नौका द्वारा नदी को पार करना, वर्षा मे लघु-शङ्कादि की निवृत्ति के लिये जाना इत्यादि अपवादों मे शक्ति-हीनता की तो कोई बात नही, परन्तु इन सब मे असावधानी तो हो ही सकती है जो कि चारित्राचार के दोष है जिन का विउसग्ग नामक पाञ्चवा प्रायश्चित्त लिया जाता है। जितनी असावधानी उतना उसका प्रायश्चित्त, एक साधक को लेना ही चाहिये। ज्ञानावलम्बन, दर्शनावलम्बन एव चारित्रावलम्बन से भी अपवाद-मार्ग में दोष-सेवन हो जाते है अर्थात् ज्ञान, दर्शन एव चारित्र की अपनी एवं दूसरो की वृद्धि के लिये उन दोष-युक्त कार्यों को करना पड़ जाता है,[१] परन्तु ऐसा करने वाला साधक यदि अतिपरिणामक है अथवा अपरिणामक है तो वह दप्पिय-दोष का पात्र है और यदि साधक परिणामक है तो वह कप्पिय प्रायश्चित्त वाला माना जाता है जिस के लिये उसे आलोचना-मात्र करनी होती है जो कि प्रथम श्रेणी का प्रायश्चित है, परन्तु कप्पिय[२] कार्यों मे भी किसी परिणामक से जो-जो असावधानिया हुई हों उनका प्रायश्चित्त उसे पृथक् रूप

---

१. जैसे कि साधु महाराज का व्याख्यान कराने के लिये जीव जन्तुओं से युक्त स्थान साफ करवाना, दरी बिछाना, चान्दनी लगवाना हवा में चान्दनी का हिलना, दरियो के नीचे जीवो का दब जाना और साधु महाराज का वहा व्याख्यान करना आदि कार्य।

२. कप्पिय=कल्पनीय अर्थात् करने योग्य कार्य।

से लेना होता है। किन्तु अतिपरिणामक के जो दप्पिय[1] दोष हैं उनका प्रायश्चित्त तो बहुत अधिक है और अपरिणामक को भी अधिक प्रायश्चित्त लेना होता है।

एक ही प्रकार के दोष-सेवन के पीछे भिन्न-भिन्न भावना के आधार पर उनका प्रायश्चित्त भी भिन्न-भिन्न होता है जैसे कि शरीर की धोआ-धाई की एक ही क्रिया है, परन्तु इस के पीछे भिन्न-भिन्न भावना होने पर अलग-अलग प्रायश्चित्त हैं। निशीथ सूत्र के तीसरे उद्देश्य में और चौथे उद्देश्य में इसके लिए लघु-मास का प्रायश्चित्त है, पन्दरहवें उद्देश्य के सूत्र १७वें और १०४ में लघु-चौमासी और छट्ठे एवं सातवें उद्देश्य में गुरुचौमासी प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।[2]

१. दर्प पूर्वक कार्य करने के जो दोष हैं।

२. निशीथ सूत्र ३।२०—

जे भिक्खू अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलंतं वा पधोअंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

निशीथ सूत्र ४।५—

जे भिक्खू अन्नमन्नस्स पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलंतं वा पधोअंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

निशीथ सूत्र १५।१७—

प्रायश्चित्त के निर्णय करने में निम्न बातो का ध्यान रखना होता है—

(१) उत्सर्ग-मार्ग का दोष है अथवा अपवाद-मार्ग का ?

(२) अपवादमार्ग मे अतिपरिणामक का दोष है अथवा परिणामक का ?

(३) परिणामक के दोष मे भी कप्पिय दोष है अथवा दप्पिय दोष ?

(४) कप्पिय दोष भी कृतयोगी द्वारा सेवन हुआ है अथवा अकृतयोगी द्वारा ?

(५) कृतयोगी द्वारा भी कितनी असावधानी हुई है ?

सिय परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

निशीथ सूत्र १५ । १०४—

जे भिक्खू विभूसा-पडियाए अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलंत वा पधोअतं वा साइज्जइ, त सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

निशीथ सूत्र ६ । २८—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण पडियाए अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलंतं वा पधोअंत वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

निशीथ सूत्र ७ । १९—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए अन्नमन्नस्स पाए सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलतं वा पधोअंत वा साइज्जइ, त सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

(६) सावधानी रखते हुए भी उस कृतयोगी की, अपवाद सेवन करने के पीछे क्या भावना काम करती है ?

इन बातों का विचार कर लेने पर तब कहीं जा कर प्रायश्चित्त का निर्णय हो पाता है।*

अब सामान्य रूप से किस-किस दोष का क्या-क्या प्रायश्चित्त होता है इस प्रकार दस प्रायश्चित्तों का वर्णन क्रमशः किया जाता है—

पायच्छित्ते दसविहे पण्णत्ते तं जहा—(१) आलोयणारिहे, (२) पडिक्कमणारिहे, (३) तदुभयारिहे, (४) विवेगारिहे, (५) विउसग्गारिहे, (६) तवारिहे, (७) छेयारिहे, (८) मूलारिहे, (९) अणवट्ठप्पारिहे, (१०) पारंचियारिहे ॥

—भगवती सूत्र २५।७।१॥

१. आलोचना—

करणिज्जा जे जोगा, तेसु उवउत्तस्स निरइयारस्स ।
छउमत्थस्स विसोही, जइणो आलोयणा भणिया ॥

(जीतकल्प सूत्र)

---

* गुरुभाईया पुरिसा तुल्लवराहे वि तेसिं नाणत्तं ।
परिणामगाइया(३) वा इड्ढिमनिक्खंत(२) असहू(२) वा ॥
पुमं(३) बाल(३) थिरा(२) चेव कयजोग्गा(२) य सेयरा ।
अहवा सभावतो पुरिसा होंति दारुण(१) भद्दगा(२) ॥

—व्यवहार सूत्र उद्देश्य १० भाष्यगाथा १९७,१९८।

परिणामक द्वारा जो कल्प्य कार्य उपयोगपूर्वक निरतिचार-रूप से किए जाते है, छद्मस्थ होने के नाते संभावित अतिक्रम आदि की विशेष-शुद्धि के लिए साधक आलोचना करता है जो कि प्रथम प्रायश्चित्त है। जैसे कि—

१. भिक्खू य गणाश्रो अवक्कम्म परपासंड-पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, नत्थिणं तस्स तप्पत्तियं केइ छेए वा परिहारे वा नन्नत्थ एगाए आलोयणाए।

—व्यवहार सूत्र १।३२॥

जो साधु अपने गण सम्प्रदाय का त्याग कर अन्य धार्मिक सम्प्रदाय अङ्गीकार करके विचरे और पुनः पहली सम्प्रदाय में आना चाहे, तो उसे कोई दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त नही आता केवल एकमात्र उसे आलोचना करनी होती है। [क्योंकि उसने अपने संयम मे कोई दोष नही लगने दिया है।]

(२) निग्गंथं च णं राओ वा वियाले वा दीहपिट्ठो लूसेज्जा; इत्थी वा पुरिसस्स ओमज्जेज्जा, पुरिसो वा इत्थीए ओमज्जेज्जा, एवं से कप्पइ, एवं से चिट्ठइ, परिहारं च से ण पाउणइ—एस कप्पे थेर-कप्पियाणं; एवं से नो कप्पइ, एवं से नो चिट्ठइ, परिहारं च णो पाउणइ—एस कप्पे जिण-कप्पियाणं।

—व्यवहार सूत्र ५।२१॥

साधु को रात्रि व सायं के समय किसी विष-धर सर्प ने काट खाया हो, उस समय उपचार जानने वाले किसी पुरुष का योग न मिले और स्त्री का मिलता हो, तो स्त्री के पास से उपचार करा लेवे, इसी प्रकार साध्वी को काटा जाने पर उसे उपचार जानने वाली स्त्री का योग न मिले और पुरुष का मिलता हो, तो वह साध्वी उस पुरुष से उपचार करा लेवे,

इस प्रकार करना उन्हें कल्पता है और इस प्रकार किया जाता है, उन्हें किसी प्रकार का पारिहारिक तप प्रायश्चित्त नहीं आता—यह स्थविर-कल्पियों की मर्यादा है। परन्तु जिन-कल्पी साधु को ऐसा करना नहीं कल्पता है और न वे ऐसा करते हैं, न करने पर उन्हें कोई पारिहारिक प्रायश्चित्त नहीं आता। (कल्प्य-प्रायश्चित्त, केवल आलोचना करनी होती है)

(३) भिक्खू य इच्छेज्जा गणं धारित्तए, नो से कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता गणं धारित्तए, कप्पइ से थेरे आपुच्छित्ता गणं धारित्तए। थेरा य से वियरेज्जा, एवं से कप्पइ गणं धारित्तए; थेरा य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पइ गणं धारित्तए। जएणं थेरेहिं अविइएणं गणं धारेइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा। जे ते साहम्मिया उट्ठाए विहरंति, णत्थि णं तेसिं केई छेए वा परिहारे वा। —व्यवहार सूत्र ३।२॥

किसी साधक के मन में कुछ साधुओं को साथ लेकर विचरने की इच्छा हुई, तो उसे स्थविर भगवान् से बिना पूछे ऐसा करना नहीं कल्पता, उनसे पूछ कर करना कल्पता है। स्थविर भगवान् आज्ञा दे देवें तो साधुओं को साथ लेकर विचरण कर सकता है, यदि वे आज्ञा न देवें तो ऐसा करना नहीं कल्पता। जो साधक स्थविर भगवान् की आज्ञा विना साधुओं को साथ लेकर जितने दिन विचरे, उतने ही दिन का उसे दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है। परन्तु जो साधु उसके साथ विचरे हैं उन्हें कोई छेद व तप प्रायश्चित्त नहीं आता। (केवल आलोचना करनी होती है)

२. प्रतिक्रमण—

छव्विहे पडिक्कमणे पराणत्ते तं जहा—उच्चार-पडिक्कमणे,

परिणामक द्वारा जो कल्प्य कार्य उपयोगपूर्वक निरतिचार-रूप से किए जाते है, छद्मस्थ होने के नाते संभावित अतिक्रम आदि की विशेष-शुद्धि के लिए साधक आलोचना करता है जो कि प्रथम प्रायश्चित्त है। जैसे कि—

१. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म परपासंड-पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए; नत्थिणं तस्स तप्पत्तियं केइ छेए वा परिहारे वा नन्नत्थ एगाए आलोयणाए।

—व्यवहार सूत्र १।३२॥

जो साधु अपने गण सम्प्रदाय का त्याग कर अन्य धार्मिक सम्प्रदाय अङ्गीकार करके विचरे और पुनः पहली सम्प्रदाय में आना चाहे, तो उसे कोई दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त नही आता केवल एकमात्र उसे आलोचना करनी होती है। [क्योंकि उसने अपने संयम मे कोई दोष नही लगने दिया है।]

(२) निग्गंथं च णं राओ वा वियाले वा दीहपिट्ठो लूसेज्जा; इत्थी वा पुरिसस्स ओमज्जेज्जा, पुरिसो वा इत्थीए ओमज्जेज्जा, एवं से कप्पइ, एवं से चिट्ठइ, परिहारं च से ण पाउणइ—एस कप्पे थेर-कप्पियाणं; एवं से नो कप्पइ, एवं से नो चिट्ठइ, परिहारं च णो पाउणइ—एस कप्पे जिण-कप्पियाणं।

—व्यवहार सूत्र ५।२१॥

साधु को रात्रि व सायं के समय किसी विष-धर सर्प ने काट खाया हो, उस समय उपचार जानने वाले किसी पुरुष का योग न मिले और स्त्री का मिलता हो, तो स्त्री के पास से उपचार करा लेवे; इसी प्रकार साध्वी को काटा जाने पर उसे उपचार जानने वाली स्त्री का योग न मिले और पुरुष का मिलता हो, तो वह साध्वी उस पुरुष से उपचार करा लेवे,

इस प्रकार करना उन्हें कल्पता है और इस प्रकार किया जाता है, उन्हें किसी प्रकार का पारिहारिक तप प्रायश्चित्त नहीं आता—यह स्थविर-कल्पियों की मर्यादा है। परन्तु जिन-कल्पी साधु को ऐसा करना नहीं कल्पता है और न वे ऐसा करते हैं, न करने पर उन्हें कोई पारिहारिक प्रायश्चित्त नहीं आता। (कल्प्य-प्रायश्चित्त, केवल आलोचना करनी होती है)

(३) भिक्खू य इच्छेज्जा गणं धारित्तए, नो से कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता गणं धारित्तए, कप्पइ से थेरे आपुच्छित्ता गणं धारित्तए। थेरा य से वियरेज्जा, एवं से कप्पइ गणं धारित्तए; थेरा य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पइ गणं धारित्तए। जएणं थेरेहिं अविइएणं गणं धारेइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा। जे ते साहम्मिया उट्ठाए विहरंति, णत्थि णं तेसिं केई छेए वा परिहारे वा। —व्यवहार सूत्र ३।२॥

किसी साधक के मन में कुछ साधुओं को साथ लेकर विचरने की इच्छा हुई, तो उसे स्थविर भगवान् से विना पूछे ऐसा करना नहीं कल्पता, उनसे पूछ कर करना कल्पता है। स्थविर भगवान् आज्ञा दे देवें तो साधुओं को साथ लेकर विचरण कर सकता है, यदि वे आज्ञा न देवें तो ऐसा करना नहीं कल्पता। जो साधक स्थविर भगवान् की आज्ञा विना साधुओं को साथ लेकर जितने दिन विचरे, उतने ही दिन का उसे दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है। परन्तु जो साधु उसके साथ विचरे हैं उन्हें कोई छेद व तप प्रायश्चित्त नहीं आता। (केवल आलोचना करनी होती है)

२. प्रतिक्रमण—

छव्विहे पडिक्कमणे पएणत्ते तं जहा—उच्चार-पडिक्कमणे,

पासवरण-पडिक्कमणे २, इत्तरिए ३, आवकहिए ४, जंकिंचि-मिच्छा ५, सोमणंइए ६ ॥ (ठाणांग सूत्र ६।११६)

पंचविहे पडिक्कमणे पराणत्ते तं जहा—आसवदार-पडिक्कमणे, मिच्छत्त-पडिक्कमणे, कसाय-पडिक्कमणे, जोग-पडिक्कमणे, भाव-पडिक्कमणे ॥ —ठाणांग सूत्र ५।३।१२॥

गुत्ती-समिइ-पमाए गुरुणो आसायणा विणय-भंगे।
इच्छाईणमकरणे लहुस-मुसाऽदिन्न-मुच्छासु ॥
अविहीइ कास-जंभिय-खुय-वायासंकिलिट्ठकम्मेसु ।
कन्दप्प—हास—विगहा—कसाय–विसयाणुसंगेसु ॥
खलियस्स य सव्वत्थ वि हिंसमणावज्जओ जयन्तस्स ।
सहसाऽणाभोगेण व मिच्छाकारो पडिक्कमणं ॥
आभोगेण वि तणुएसु नेह-भय-सोग-बाउसाईसु ।
कन्दप्प-हास-विगहाईएसु नेयं पडिक्कमणं ॥
(जीतकल्प सूत्र ॥)

प्रथम प्रायश्चित्त में तो कल्प्य कार्य जिस प्रकार किये गये है उनका योग्य व्यक्ति के सम्मुख कथन करना होता है और इस द्वितीय प्रायश्चित्त मे दिन भर के कार्यों में जो असावधानियां एव त्रुटियाँ रह गई है उनका मिथ्या-दुष्कृत दिया जाता है। जैसे कि मन वचन और काया की गुप्तियों के पालन करने में जो त्रुटियां रह गई है, ईर्या-समिति आदि पाञ्च समितियों के पालन मे जो असावधानिया हुई हैं यथा बाते करते हुए

३. तदुभय—

संभम-भयाउरावइ-सहसाऽणाभोगऽणप्पवसओ वा ।
सव्ववयाईयारे तदुभयमासंकिए चेव ॥
दुच्चिन्तिय-दुब्भासिय-दुच्चेट्ठिय एवमाइयं बहुसो ।
उवउत्तो वि न जाणइ जं देवसियाइ-अइयारं ॥
सव्वेसु वि बीय-पए दंसण-नाण-चरणावराहेसु ।
आउत्तस्स तदुभयं सहसक्काराइणा चेव ॥

इस तीसरे प्रायश्चित्त मे, दोषो की आलोचना भी की जाती है और मिथ्यादुष्कृत भी दिया जाता है। यह जिन-जिन दोषो का होता है वे इस प्रकार है—

सम्भ्रान्तावस्था मे, भयावस्था में, रोगावस्था मे द्रव्य, क्षेत्र, काल एव भाव की आपद् अवस्था मे, उत्सुकतापूर्वक शीघ्रता से कार्य करने मे, अनजान-पन मे, कोई कार्य अपने वश के बाहिर हो जाने से उस समय ज्ञान, दर्शन, एवं चारित्र के मूलगुणरूप पाञ्च महाव्रतो तथा उत्तरगुण दश-विध प्रत्याख्यान पाञ्च समिति आदि मे जो अतिचार लगते है अथवा अतिचार-विषयक आशंका होती है तो उस अवस्था मे यह तीसरा प्रायश्चित्त किया जाता है।

इसी प्रकार जो-जो दुश्चिन्तन किया हो, दुर्भाषा बोली हो, दुष्क्रिया का हो तथा उपयोग लगाने पर भी जो देवसी आदि अतिचार स्मृति मे न आरहे हों उन सब का 'तदुभय' प्रायश्चित्त होता है।

व्यक्त अर्थात् गीतार्थ द्वारा अपवाद-मार्ग में आचरण करते, उपयोग रखते हुए भी ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के हेतु जो अकस्मात् विराधना होती है तो उसका 'तदुभय' प्रायश्चित्त होता है।[1]

४. विवेक—

पिण्डोवहि, सेज्जाई गहियं कडजोगिणोवउत्तेण।
पच्छा नायमसुद्धं, सुद्धो विहिणा विगिञ्चन्तो ॥
कालाऽद्धाणाइच्छिय-अणुग्गयत्थमिय-गहियमसढो उ।
कारण-गहिय-उव्वरियं भत्ताइ-विगिञ्चियं सुद्धो ॥

भोजन, वस्त्र आदि उपकरण एवं शय्यादि, कृतयोगी=कृताभ्यासी द्वारा उपयोगपूर्वक ग्रहण करने के पश्चात् अवज्ञात हो कि यह गृहीत वस्तु सदोष है अशुद्ध है, तो विधिपूर्वक उसका त्याग करना ही, शुद्धि है जो कि चतुर्थ प्रायश्चित्त है।

इसी प्रकार प्रथम प्रहर में ली वस्तु चतुर्थ प्रहर में रह जाने पर; मार्ग चलते पोने-पाञ्च-माइल से ऊपर चले जाने से एवं शठता रहित हो कर सूर्योदय से पूर्व एवं सूर्यास्त के पश्चात् वस्तु के ग्रहण कर लेने पर पता चले कि अभी सूर्योदय नहीं हुआ अथवा अस्त हो चुका है तो उस वस्तु को विधिपूर्वक त्याग करने से शुद्धि होती है।

रोगी के निमित्त, आचार्य महाराज के निमित्त, अल्पवयस्क साधक के निमित्त, अभ्यागत प्राघूर्णक=अतिथि के निमित्त, दुर्लभ्य वस्तु के सहसा ग्रहण कर लेने के कारण यदि आवश्यकता से अधिक वस्तु ग्रहण कर ली गई हो तो वह

१. वियत्तकिच्च-पायच्छित्ते—ठाणांग सूत्र ४।१।३३॥

वस्तु किसी गृहस्थ आदि को नहीं दी जाती अपितु एकान्त स्थान पर विधि-पूर्वक परिष्ठापन की जाती है जो कि चतुर्थ प्रायश्चित है। (लाई हुई वस्तु विना काम में आए परिष्ठापन करने से आत्मा को धक्का-सा लगता है और वह आगे को फिर अधिक लाने से बचने का प्रयत्न करता है।)

५. व्युत्सर्ग—

गमणागमण-विहारे सुयम्मि सावज्ज-सुविणाईसु।
नावा-नइ-सन्तारे पायच्छित्तं विउस्सग्गो॥

आने-जाने में, विहार करने में श्रुताभ्यास में, निद्रावस्था में सावद्यकारी स्वप्न आने पर, घुटनों से नीचे जल वाली नदी को काया द्वारा पार करने मे तथा इससे अधिक गहरे पानी को नौका द्वारा पार करने आदि में जो अयत्ना होती है, उसके प्रायश्चित्त में कायोत्सर्ग=ध्यान लगाया जाता है जो कि पञ्चम प्रायश्चित्त है।

६. तप—

उद्देसऽज्झयण-सुयक्खन्धंगेसु कमसो पमाइस्स।
कालाइक्कमणाइसु नाणायाराइयारेसु॥
(एवं दर्शनाचारातिचारेषु चारित्राचारातिचारेषु च)

ज्ञान, दर्शन एव चारित्र[1] मे अतिक्रम, व्यतिक्रम और

---

१. तिविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा—णाण-पायच्छित्ते, दसण-पायच्छित्ते, चरित्त-पायच्छित्ते॥ —ठाणाग सूत्र ३।४।१२॥

अतिचार[1] तक के तथा अपवाद के दोषों का प्रायश्चित्त-विधान 'तदुभय' नामक तीसरे प्रायश्चित्त तक है किन्तु विशेष प्रमाद[2] द्वारा ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र में जो अतिचार लगते हैं एवं अनाचार[3] होते हैं उन दोषों का यह 'तप' नामक छठा प्रायश्चित्त है। वे दोष चारित्र-विषयक चाहे मूलगुण-सम्बन्धी हैं अथवा उत्तरगुण-सम्बन्धी तथा च ज्ञान-विषयक हों अथवा दर्शन-विषयक, जिन में विशिष्ट-प्रमाद कारण है उन दोषों के लिये यह 'तप' प्रायश्चित्त लेना होता है।

इस तप-प्रायश्चित्त के मूल में दो भेद हैं—उग्घाइम अर्थात् लघु प्रायश्चित्त तथा अणुग्घाइम[4] अर्थात् गुरु प्रायश्चित्त; इन दोनों के मास तथा चौमास[5], दो-दो भेद हैं,

---

१. तिण्हमइक्कमाणं आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरहिज्जा जाव पडिवज्जेज्जा तं जहा—णाणाइक्कमस्स, दंसणाइक्कमस्स, चरित्ताइक्कमस्स, एवं वइक्कमाणं, अइयाराणं, अणायाराणं ॥

२. निद्रा, विकथा, मद, विषय, कषाय ॥

३. अनाचार की अनेकों कोटियां हैं। सामान्य-प्रमाद से सेवित अनाचार का 'तदुभय' तीसरा प्रायश्चित्त, विशिष्ट प्रमाद द्वारा सेवित अनाचार का छठा 'तप' प्रायश्चित्त, कुछ जान-बूझ कर सेवन किये गए अनाचार का सातवां 'छेद' प्रायश्चित्त और सर्वथा जान-बूझ कर सेवन किये गए अनाचार का आठवां 'मूल' प्रायश्चित्त होता है।

४. पंच अणुग्घाइम पण्णत्ता तं जहा—हत्थकम्म करेमाणे, मेहुणं पडिसेवमाणे, राइ-भोयणं भुंजमाणे, सागारिय-पिंड भुंजमाणे, राय-पिंड भुंजमाणे ॥

—ठाणांग सूत्र ५।२।२॥

५. चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी के शासन-काल में

इस प्रकार चार भेद होते है—(१) लघुमास[1], (२) गुरुमास, (३) लघुचौमासी, (४) गुरुचौमासी[2]। इन चारों के फिर तीन-तीन भेद किए गए है—

(१) परवश-पने किसी म्लेच्छ अनार्य राजा आदि तथा देवता के दबाव से सेवन किए गए उपयोग रहित दोषो के प्रायश्चित्त।

(२) स्वय आतुरता से उपयोग सहित सेवन किए गए दोषो के प्रायश्चित्त।

(३) जान-बूझ कर मोहनीय-कर्म के उदय से मूर्च्छाभाव-पूर्वक सेवन किए गए दोषो के प्रायश्चित्त।

इन बारह प्रकार के तप-प्रायश्चित्तों के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तीन-तीन भेद कर देने पर कुल छत्तीस भेद बनते है।

इन छत्तीस प्रकार के 'तप' प्रायश्चित्तों में कौन-सा तप और कितना तप होता है यह प्राचीन आचार्य देवों की धारणा-नुसार नीचे के कोष्ठक मे दिया जाता है—

उत्कृष्ट तप प्रायश्चित्त छः मास का होता है, अतः छः मास के भी दो भेद गणना मे आते हैं जैसे कि लघु-छमासी १६५ उपवास, गुरु-छमासी १८० उपवास।

१. लघु-मास से भी छोटा तप-प्रायश्चित्त 'भिन्नमास' आया है जो कि २५ उपवास का होता है।

२. पचविहे ओयार-पकप्पे पण्णत्ते तजहा—(१) मासिए उग्घाइए, (२) मासिए अणुग्घाइए, (३) चउमासिए उग्घाइए, (४) चउमा-सिए अणुग्घाइए, (५) आरोवणा॥

—ठाणाग सूत्र ५।२।१४॥

तीन श्रेणियां	परवशपने उपयोग रहित			आतुरता से उपयोग सहित			मोहनीय कर्मोदय मूर्च्छाभाव से		
तीन २ कोटियां	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
लघु मास	४ एकासन	१५ एकासन	२७ एकासन	४ आयम्बिल	१५ आयम्बिल	२७ आयम्बिल	४ उपवास	१५ उपवास	२७ उपवास
गुरु मास	४ नीवी	१५ नीवी	३० नीवी	४ आयम्बिल	१५ आयम्बिल	३० आयम्बिल	४ उपवास	१५ उपवास	३० उपवास
लघु चौमासी	४ आय०	६० नीवी	१०८ उपवास	४ उपवास (धार विगय का त्याग)	४ बेले धार विगय का त्याग	१०८ उपवास धार विगय का त्याग	४ बेले पारने में आयम्बिल	४ तेले पारने में आयम्बिल	१०८ उपवास पारने में आयम्बिल
गुरु चौमासी	४ उपवास	४ बेले	१२० उपवास तथा ४ मास का छेद (१००)	४ बेले तथा ४ दिन का छेद	४ तेले तथा ६ दिन का छेद	१२० उपवास तथा ४ मास का छेद (१०८)	४ तेले पारने में आयम्बिल तथा ४० दिन का छेद	१५ तेले पारने में आयाम्बिल तथा ६० दिन का छेद	१२० उपवास पारने में आयम्बिल तथा मूल दीक्षा (१२०)[1]

१. महाव्रतों की आवृत्ति करा कर १२० दिन का छेद देना।

निद्रा, विकथा, मद, विषय और कषाय मे से किसी भी विशिष्ट प्रमाद के कारण ज्ञानाचार में लगे दोषों के प्रायश्चित्त इस प्रकार है—

१. जे भिक्खू चउहिं संझाएहिं सज्झायं करेइ करेन्तं वा साइज्जइ, तं जहा—पुव्वाए संझाए, पच्छिमाए संझाए, अवरण्हे, अड्ढरत्ते, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —निशीथ सूत्र १६।८॥

प्रातःकाल की सन्ध्या के दो घड़ी के समय में, सायंकाल की सन्ध्या के दो घडी के समय मे, दोपहर एव अर्द्धरात्रि के दो-दो घडी के समय मे आगम-स्वाध्याय स्वय करने औरों से करवाने और करते हुओ को अच्छा समझने से लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

२. जे भिक्खू चउसु महा-पाडिवएसु सज्झायं करेइ करेन्तं वा साइज्जइ, तं जहा—सुगिम्हया पाडिवए, आसाढी पाडिवए, भद्दवय पाडिवए, कत्तिय पाडिवए; तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र १६।१२॥

चैत्र शुक्ला पूर्णिमा और वैशाख कृष्णा १, आषाढ पूर्णिमा और श्रावण कृष्णा १, भाद्र पूर्णिमा और आश्विन कृष्णा १* और कार्तिक पूर्णिमा तथा मृगशर कृष्णा १ को आगम-स्वाध्याय स्वय करने औरो से करवाने एवं करते हुओ को अच्छा समझने से लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

३. जे भिक्खू असज्झाइए सज्झायं करेइ करेंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र १६।१५॥

* इद पाडिवए॥ आश्विन पूर्णिमा और कार्तिक कृष्णा १ —ठाणाग सूत्र ४।२।१०॥

अकाल में गर्जना चमकना एवं चन्द्रग्रहण सूर्यग्रहण आदि अस्वाध्याय-काल में स्वाध्याय करने, करवाने एवं करने वाले को अच्छा समझने से लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

४. जे भिक्खू हेट्ठिल्लाइं समोसरणाइं अवाएत्ता उवरिल्लाइं समोसरणाइं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —निशीथ सूत्र १६।१७॥

प्रमाद के कारण शिष्यों को क्रमशः न पढ़ाने से और क्रमशः न पढ़ने वालों को अच्छा समझने से लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

५. जे भिक्खू नव-बंभचेराइं अवाएत्ता उवरिम-सुयं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—निशीथ सूत्र १६।१८॥

आचाराङ्ग सूत्र पढ़ाए विना ठाणांग समवायांग आदि आगम पढ़ाने, पढ़ाने वाले को अच्छा समझने से लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

६. जे भिक्खू अवत्तं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू अपत्तं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू पत्तं न वाएइ, न वाएंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहार-ट्ठाणं उग्घाइयं।
—निशीथ सूत्र १६।२१,२२॥

कषाय प्रमाद के कारण रागद्वेष के वशीभूत होकर अव्यक्त तथा अपात्र [1] को पढ़ाना और पात्र को न पढ़ाना और इसे अच्छा समझना तो उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

---

१. (क) चत्तारि अवायणिज्जा पण्णत्ता तंजहा—अविणीए, विगइ-पडिबद्धे, अविओसिय-पाहुडे, मायी॥

—ठाणांग सूत्र ४।३।२७॥

७. जे भिक्खू दोण्हं सरिसगाणं एक्कं संचिक्खावेइ एक्कं न संचिक्खावेइ, एक्कं वाएइ, एक्कं न वाएइ, न वाएंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—निशीथ सूत्र १६।२३॥

दोनों एक जैसे शिष्यों को रागद्वेष के वशीभूत होकर एक को शिक्षा देनी एक को न देनी, एक को पढाना, एक को न पढाना और इसे अच्छा समझना तो उसे लघुचौमासी प्रायश्चित आता है।

८. जे भिक्खू आयरिय-उवज्झाएहिं अविदिन्नं गिरं आइयइ, अइयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—निशीथ सूत्र १६।२४॥

(ख) तिन्तिणिक-चलचित्त-गाणङ्गणिक-दुर्बलचारित्राऽऽचार्य-परिभाषि-वामावर्त्त-पिशुनाकृतसामाचारीक—गर्वित-प्रकीर्णक-निह्नविनः एकादशाऽपात्रभूताः शिष्या आदिमाद्दष्टभावोऽप्राप्तः, तरुणधर्मा पुनरव्यक्तः । अथैतेषां सूत्रार्थप्रदाने प्रायश्चित्तमाह—

अव्वत्ते अ अपत्ते लहुगा, लहुगा य होंति अप्पत्ते ।
लहुगा य दव्व-तिंतिणि, रस-तिंतिणि होंति चतुगुरुगा ॥

—बृहत्कल्प भाष्यगाथा ७८८॥

अव्यक्तः=तरुणधर्मा तस्य तथा "अपत्ते" त्ति अपात्राणामेकादशसंख्यकाना सूत्रार्थौ यदि ददाति तदा चत्वारो लघुकाः । "लहुगा य होंति अप्पत्ते" त्ति अप्राप्तः—आद्याद्दष्टभावस्तस्य ददाति चत्वारो लघवः । 'रसतिन्तिणिकस्य' आहारतिन्तिणिकस्य ददाति चत्वारो गुरवः । उपधि-शय्यातिन्तिणिकयोर्ददानस्य चत्वारो लघव इत्यनुक्तमप्यत्रावसातव्यम्, निशीथचूर्ण्युक्तत्वात् ॥

मद एवं कषाय के वशीभूत होकर तथा प्रमाद के कारण आचार्य उपाध्याय महाराज से न पढ़कर स्वयं पढ़ना और इसे अच्छा समझना तो उसे लघुचौमसी प्रायश्चित्त आता है।

६. जे भिक्खू अन्नउत्थियं वा गारत्थियं वा वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा पडिच्छइ पडिच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र १६।२५,२६॥

विकथा आदि प्रमाद के वश होकर अन्य-तीर्थी एवं गृहस्थ को पढ़ाना तथा उनसे पढ़ना एवं इसे अच्छा समझना तो उसे लघुचौमासी प्रायश्चित आता है।

१०. जे भिक्खू पासत्थं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू पासत्थेण पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू ओसन्नं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू ओसन्नेण पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू कुसीलं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू कुसीलेण पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू नितियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू नितियेण पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू संसत्तं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू संसत्तेण पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं॥

—निशीथ सूत्र १६।२७ से ३६॥*

निद्रा, विकथा तथा कषाय आदि प्रमाद के वश पार्श्वस्थ अवसन्न, कुशील, नित्यक एवं संसक्त को पढ़ाना तथा उन से पढ़ना और इसे अच्छा समझना तो उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

* यदि पार्श्वस्थादिभ्यः सूत्रमर्थं वा ददाति तदा चत्वारो लघवः, यथाच्छन्देभ्यः प्रददाति चत्वारो गुरवः॥—वृहत्कल्प भाष्य टीका ७५६॥

इत्यादि और भी ज्ञानाचार विषयक दोषों के प्रायश्चित्त समझ लेने चाहिये।

अब दर्शनाचार-सम्बन्धी दोषों के प्रायश्चित्तों का वर्णन किया जाता है। इस प्रसङ्ग में इतना ध्यान रखना चाहिये कि केवलि-प्ररूपित प्रवचन के किसी विषय में जिस किसी को शङ्का आई हो अथवा विपरीत श्रद्धान हुआ हो, तो उस की प्ररूपणा करने पर तो उसे छेद (पृष्ठ १५ पर दिये गए उत्कृष्ट गुरुचौमासी, जिस मे मूल और छेद प्रायश्चित्त है) दिया जाता है [1] परन्तु केवल प्रमादवशात् हँसी मखौल तथा आवेश आदि में आकर जिन प्रवचन से विपरीत उथल-पुथल बातें करने से ये तप-प्रायश्चित्त देने को कहा है जैसे कि—

१. जे भिक्खू 'नत्थि संभोग-वत्तिया पकिरिय' त्ति वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ५।६३॥

जब कि सब ही साधु पाञ्च महाव्रत धारी है तो सब के साथ सारे सम्भोग रखने मे कोई दोष नही—ऐसा कहने वाला एव ऐसा कहने वाले को अच्छा समझने वाला साधक लघुमास के प्रायश्चित्त का अधिकारी है।

२. जे भिक्खू उग्घाइयं अणुग्घाइयं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू अणुग्घाइयं उग्घाइयं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र १०।१५,१६॥

---

१. सर्वज्ञ भगवान् तीर्थंकर देव के आसातनाकारी बहुत वचन बोलने से तो दसवा पाराञ्चिक प्रायश्चित्त होता है और इसके स्थान पर अपवाद-रूप में आठवा मूल प्रायश्चित्त भी दे दिया जाता है।

प्रमाद के कारण खोज किये विना अथवा रागद्वेष के वशीभूत होकर लघु-प्रायश्चित्ती को गुरु-प्रायश्चित्ती और गुरु प्रायश्चित्ती को लघु-प्रायश्चित्ती कहने वाले और इसे अच्छा समझने वाले साधक को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

३. जे भिक्खू अपज्जोसवणाए पज्जोसवेइ, पज्जोसवंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू पज्जोसवणाए न पज्जोसवेइ, न पज्जोसवंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र १०।४२,४३॥

प्रमाद के कारण अथवा आभिनिवेशिक पक्षपात के कारण अपर्युषण-काल में पर्युषण करना और पर्युषण-काल में पर्युषण न करने और इसे अच्छा समझने से गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

४. जे भिक्खू भदन्तं अन्नयरीए अच्चासायणाए अच्चासाएइ, अच्चासाएंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र १०।४॥

जो अपने रत्नाधिक पूज्य पुरुषों की कोई आसातना करता है एवं आसातना करने वाले को अच्छा समझता है तो उस साधक को गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

५. जे भिक्खू दिया-भोयणस्स अवण्णं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू राइ-भोयणस्स वण्णं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ११।७२,७३॥

हँसी-मखौल एवं गुप्त आदि में दिवा-भोजन को बुरा कहना और रात्रि-भोजन की प्रशंसा करना और ऐसा कहते

हुओ को अच्छा समझना तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

६. जे भिक्खू अहाच्छन्दं पसंसइ, पसंसंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू अहाच्छन्दं वंदइ, वंदंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ११।८२,८३॥

स्नेह मे आकर, किसी स्वार्थ के वशीभूत होकर अथवा किसी की लिहाज मे आकर अपच्छन्दे की प्रशसा करनी और उसे वन्दना करनी एव इसे अच्छा समझना, तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

७. जे भिक्खू धम्मस्स अवण्णं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू अधम्मस्स वण्णं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ११।९,१०॥

किसी सिद्धान्त के मोह मे आकर, हँसी-मखौल के भाव से धार्मिक विषयो का उपहास करना तथा अधार्मिक विषयो की प्रशंसा करना तथा इसे अच्छा समझना तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

८. जे भिक्खू अन्नउत्थियं वा गारत्थियं वा वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू अन्नउत्थियेण वा गारत्थियेण वा पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र १९।२५,२६॥

अन्यतीर्थिक तथा गृहस्थ को आगम पढा कर तथा इन से पढ कर प्रवचन की हीलना मे निमित्त बनने वाले और इसे अच्छा समझने वाले साधक को लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

९. जे भिक्खू दुगुञ्छिय-कुलेसु असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गहंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू दुगुञ्छिय-कुलेसु वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कम्बलं वा, पायपुच्छणं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गहंतं व साइज्जइ; जे भिक्खू दुगुञ्छियकुलेसु वसहिं पडिग्गाहेइ, पडिग्गहंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—निशीथ सूत्र १६।२७,२८,२९॥

दुर्गञ्छनीय कुलों से आहार पानी, वस्त्र पात्र, तथा वसति-शय्या लेकर जिन-शासन की अवहेलना में निमित्त बनने वाले एवं इसे अच्छा समझने वाले साधक को लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ॥

१०. जे भिक्खू पडिग्गहं अणलं अथिरं अधुवं अधारणिज्जं धरेइ, धरंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—निशीथ सूत्र १४।८॥

जो साधक टूटे-फूटे अस्थिर, न रखने योग्य पात्रों को रख कर जिन-शासन की अवहेलना कराता है और इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

११. जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा न गवेसइ, न गवेसंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा उम्मग्गं वा पडिपहं वा गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—निशीथ सूत्र १०।२६,२७॥

जो साधक, किसी बीमार रोगी का पता लग जाने पर, उसकी सेवा से पराङ्मुख होकर दूर टलता है, जिस से वह जिन-शासन की निन्दा का निमित्त बना एवं दूर टलते हुओं को अच्छा जाने, तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ।

इत्यादि अनेकों प्रकार के दर्शनाचार-विषयक दोषों के प्रायश्चित्त समझ लेने चाहियें।

अब चारित्राचार के प्रायश्चित्तों का वर्णन किया जाता है।

विषय, कषाय, निद्रा, मद और विकथा रूप प्रमाद के वशीभूत होकर चारित्राचार में जो दोष लगते हैं उनके दो भेद होते हैं, मूलगुण के दोष और उत्तरगुण के दोष। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह विषयक तथा रात्रि-भोजन-त्याग विषयक दोषों को मूलगुणों के दोष कहा जाता है और पांच समिति, तीन गुप्ति, आहार, विहार, एवं दशविध प्रत्याख्यान विषयक दोषों को उत्तरगुणों के दोष कहा जाता है। इन सब दोषों के प्रायश्चित्तों का वर्णन क्रमशः इस प्रकार है—

मूलगुणों के प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए विण्णवेइ, विण्णवंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ६।१॥

जो साधक किसी स्त्री को मैथुन भाव से कोई वचन कहता है और इस प्रकार के वचन कहने वाले के अशुभ विचारों में रस लेता है तो उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए लेहं लिहइ, लेहं लेहावेइ; लेह-वडियाए बहियाए गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ६।१२॥

जो साधक किसी स्त्री को मैथुन भाव से कोई पत्र लिखता है अथवा दूसरे से लिखवाता है और लिखने के लिए बाहिर एकान्त स्थान में जाता एवं ऐसा करने वाले के विचारों में रस लेता है तो उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए कलहं कुज्जा, कलहं बूया, कलह-वडियाए गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ६।१२॥

जो साधक माता के सदृश इन्द्रियों वाली किसी स्त्री से मैथुन के भाव से किसी के साथ क्लेश करता है, क्लेशकारी वचन बोलता है, क्लेश करने के लिए बस्ती को छोड़ बाहिर गमन करता है और ऐसा करने वाले के विचारों में रस लेता है तो उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अहयाइं वत्थाइं धरेइ, धरंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए धोव-रत्ताइं वत्थाइं धरेइ, धरंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ६।२०,२१॥

जो साधक मातृ-सदृश इन्द्रियों वाली किसी स्त्री के साथ मैथुन के भाव से अक्षत अविक्षत तथा धो-साफ करके वस्त्रों को धारण करता है एवं ऐसा करने वाले के विचारों में रस लेता है तो उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त लेना होता है।

५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ६।२४॥

जो साधक मातृ-समान किसी स्त्री से मैथुन के भाव रख कर अपने पाँव मसले, साफ करे और ऐसा करने वाले को अच्छा समझे तो उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए खीरं वा, दहिं वा, नवणीयं वा, गुलं वा, खण्ड वा, सक्कर वा, मच्छण्डियं वा अन्नयरं वा पणीयं आहारं आहारेइ, आहारतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —निशीथ सूत्र ६।७७॥

जो साधक अपनी माता के समान किसी स्त्री के साथ मैथुन करने के भाव से दूध, दही, मक्खन, गुड़, खाण्ड, शक्कर, मिश्री एव अन्य कोई प्रणीत आहार करता है, एव ऐसा करने वाले के विचारो मे रस लेता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ।

७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए तेइच्छं आउट्टइ तेइच्छं आउट्टंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —निशीथ सूत्र ७।७६॥

जो साधक किसी स्त्री के साथ मैथुन के भाव से शरीर की चिकित्सा स्वय करता है औरो से करवाता है और करते हुओं को अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए मणुन्नाइं पोग्गलाइं उवकिरइ, उवकिरंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —निशीथ सूत्र ७।८१॥

जो साधक मैथुन भाव से सुगन्धित पुद्गलो को, शरीर पर वस्त्र पर अथवा स्थानक मे बिखेरता है एव इसे अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ; पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—निशीथ सूत्र ७।८५,८६॥

जो साधक मैथुन भाव से किसी को आहार पानी देता है, दिलवाता है और देने वाले के अशुभ विचारों में रस लेता है, इसी प्रकार मैथुन भाव से आहार पानी स्वयं ग्रहण करता है और इसे अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुच्छणं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ; पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र ७।८७,८८॥

जो साधक मैथुन भाव से किसी को वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन देता है, दिलवाता है और इसे अच्छा समझता है, इसी प्रकार मैथुन भाव से स्वयं ग्रहण करता हैं तथा इसे अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

११. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ; पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ७।८६,९०॥

जो साधक किसी स्त्री से मैथन के भाव से उसे पढ़ाता है अथवा उससे पढ़ता है और ऐसा करने वाले के विचारों में रसानुभूति रखता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-पडियाए अन्नयरेणं इंदिएणं आगारं करेइ, करंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र ७।९१॥

जो साधक किसी स्त्री को अपनी किसी इन्द्रिय के आकार से अपने मैथुन के भाव जतलाता है और ऐसी हरकत करने

वालों को अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१३. निग्गन्थिं च णं गिलायमाणिं माया वा भगिणी वा धूया वा पलिस्सएज्जा, तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —बृहत्कल्प सूत्र ४।९॥

कारण पड़ने पर कोई साधु किसी साध्वी की रुग्णावस्था में सेवा करता हुआ उसे माता बहिन व पुत्री समझ कर कर रहा है, परन्तु इस बीच उसका मन विकृत हो जाए अर्थात् मैथुन के भाव आ जाएँ तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१४. निग्गथं च णं गिलायमाणं पिया वा भाया वा पुत्ते वा पलिस्सएज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —बृहत्कल्प सूत्र ४।१०॥

किसी कारण के आ पड़ने पर कोई साध्वी किसी साधु की रुग्णावस्था में सेवा कर रही है और अपने मन में पिता भाई व पुत्र की भावना लिये हुए है परन्तु बीच में यदि उसके मन में मैथुन के भाव आ जाएँ तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१५. निग्गंथीए य राओ वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा विगिञ्चमाणीए वा विसोहेमाणीए वा अन्नयरे पसुजाईए वा पक्खिजाईए वा अन्नयर-इन्दियजाए तं परामुसेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, हत्थकम्म-पडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—बृहत्कल्प सूत्र ५।१३॥

कोई साध्वी, सायं अथवा रात्रि में उच्चार-प्रश्रवण करने गई, किसी जीव-जन्तु अथवा काष्ठ आदि का उसके शरीरा-

वयव-विशेष से स्पर्श हो जाने पर यदि वेद-मोह उदय हो जाए तथा इस स्पर्श की और इच्छा करे, और हस्त-कर्म के भाव आ जाएँ तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१६. निग्गंथीए य राओ वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा विगिञ्चमाणीए वा विसोहेमाणीए वा अन्नयरे पसुजाईए वा पक्खिजाईए वा अन्नयरंसि सोयंसि ओगाहेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—बृहत्कल्प सूत्र ५।१४॥

कोई साध्वी सायं अथवा रात्रि के समय उच्चार प्रश्रवण करने गई, किसी जीव-जन्तु अथवा काष्ठ आदि का योनिस्थान से स्पर्श हो जाने पर यदि वेद-मोह उदय हो जाए तथा ऐसे स्पर्श की और इच्छा बनी रहे, और उस साध्वी के मन में पुरुष से मैथुन के भाव आ जाएँ तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१७. जे भिक्खू हत्थकम्मं करेइ, करंतं वा साइज्जइ। जे भिक्खू अंगादाणं कट्ठेण वा कलिञ्चेण वा अंगुलियाए वा सलागाए वा संचालेइ, संचालंतं वा साइज्जइ। जे भिक्खू अंगादाणं संबाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संबाहंतं वा पलिमद्दंतं वा साइज्जइ। जे भिक्खू अंगादाणं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलंतं वा पधोवंतं वा साइज्जइ। जे भिक्खू अंगादाणं निच्छल्लेइ, निच्छलंतं वा साइज्जइ। जे भिक्खू अंगादाणं अन्नयरंसि अचित्तंसि सोयंसि अणुपवेसेत्ता सुक्क-पोग्गले निग्घायइ, निग्घायंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —निशीथ सूत्र १।१,२,३,६,७,६॥

१८. देवे य इत्थिरूवं विउव्वित्ता निग्गंथं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं

अणुग्घाइय। देवे य पुरिसरूवं विउव्वित्ता निग्गंथिं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्ठाण अणुग्घाइय। देवी य इत्थिरूवं विउव्वित्ता निग्गंथं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइय, देवी य पुरिसरूवं विउव्वित्ता निग्गंथीं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्ठाणं अणुग्घाइय। —बृहत्कल्प सूत्र ५।१से४॥

१६. जे भिक्खू लहुसग फरुसं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाण उग्घाइयं। —निशीथ सूत्र २।१८॥

जो साधक जरा सी भी वाचनिक हिंसा स्वयं करता है दूसरे से करवाता है और करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

२०. जे भिक्खू लहुसगं मुसं वयइ, वयतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —निशीथ सूत्र २।१६॥

जो साधक थोड़ा सा भी मृषावाद स्वयं बोलता है दूसरे से बुलवाता है और इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

२१. जे भिक्खू लहुसगं अदत्तं आइयइ, आइयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाण उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र २।२०॥

जो साधक सूक्ष्म चोरी—विना आज्ञा किसी की वस्तु ग्रहण करता है, करवाता है और ग्रहण करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

२२. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गन्थीण वा वेरज्ज-विरुद्ध-रज्जंसि सज्जं

गमणं सज्जं आगमणं सज्जं गमणागमणं करेइ करंतं वा साइज्जइ, से दुहओ वीइक्कममाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—बृहत्कल्प सूत्र १।३८॥

जहाँ कोई राज्य-व्यवस्था न हो (अराजकता व्याप्त हो) जिस राज्य में गृह-युद्ध चल रहा हो, ऐसे देशों में कोई निश्चित अधिकारी न होने से साधु साध्वी को वहां आना-जाना नहीं कल्पता; यदि कोई साधक ऐसे देशों में आता-जाता है और इसे अच्छा समझता है तो वह साधु-पक्ष और गृहस्थ-पक्ष, दोनों पक्षों के दोषों का सेवन करता है और उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

२३. भिक्खू य उग्गय-वित्तीए अणत्थमिय-संकप्पे संथडिए निव्विइ-गिच्छे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता आहारमा-हारेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा, से जं च मुहे, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे, तं विगिञ्चमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; तं अप्पणा भुञ्जमाणे अन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —बृहत्कल्प सूत्र ५।६॥

साधु की प्रतिज्ञा होती है कि वह सूर्योदय से पूर्व एवं सूर्यास्त के पश्चात् आहार न करेगा। वह साधक, शरीर से सर्वथा समर्थ है, उसे सूर्योदय में अथवा सूर्यास्त में कोई सन्देह भी नहीं, किसी से आहार-पानी ग्रहण कर लिया, किन्तु आहार-पानी करते समय उस साधक के मन में (बादल धूल आदि के हट जाने से) यह निश्चय हुआ कि अभी सूर्य उदय नहीं हुआ अथवा सूर्य अस्त हो चुका है। उस समय यदि वह साधक, जो मुख में आहार है वह बाहिर निकाल दे और जो हाथ में है उसे छोड़ दे और जो पात्र में है उसे परठ दे तो वह

अणुग्घाइयं। देवे य पुरिसरूवं विउव्वित्ता निग्गंथिं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। देवी य इत्थिरूवं विउव्वित्ता निग्गंथं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं, देवी य पुरिसरूवं विउव्वित्ता निग्गंथीं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —बृहत्कल्प सूत्र ५।१से४॥

१९. जे भिक्खू लहुसगं फरुसं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —निशीथ सूत्र २।१८॥

जो साधक जरा सी भी वाचनिक हिंसा स्वयं करता है दूसरे से करवाता है और करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

२०. जे भिक्खू लहुसगं मुसं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —निशीथ सूत्र २।१९॥

जो साधक थोड़ा सा भी मृषावाद स्वयं बोलता है दूसरे से बुलवाता है और इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

२१. जे भिक्खू लहुसगं अदत्तं आइयइ, आइयंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—निशीथ सूत्र २।२०॥

जो साधक सूक्ष्म चोरी—बिना आज्ञा किसी की वस्तु ग्रहण करता है, करवाता है और ग्रहण करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

२२. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गन्थीण वा वेरज्ज-विरुद्ध-रज्जंसि सज्जं

गमणं सज्जं आगमणं सज्जं गमणागमणं करेइ करंतं वा साइज्जइ, से दुहओ वीइक्कममाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—बृहत्कल्प सूत्र १।३८॥

जहाँ कोई राज्य-व्यवस्था न हो (अराजकता व्याप्त हो) जिस राज्य में गृह-युद्ध चल रहा हो, ऐसे देशों में कोई निश्चित अधिकारी न होने से साधु साध्वी को वहां आना-जाना नहीं कल्पता; यदि कोई साधक ऐसे देशों में आता-जाता है और इसे अच्छा समझता है तो वह साधु-पक्ष और गृहस्थ-पक्ष, दोनों पक्षों के दोषों का सेवन करता है और उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

२३. भिक्खू य उग्गय-वित्तीए अणत्थमिय-संकप्पे संथडिए निव्विइ-गिच्छे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा, से जं च मुहे, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे, तं विगिञ्चमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; तं अप्पणा भुञ्जमाणे अन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —बृहत्कल्प सूत्र ५।६॥

साधु की प्रतिज्ञा होती है कि वह सूर्योदय से पूर्व एवं सूर्यास्त के पश्चात् आहार न करेगा। वह साधक, शरीर से सर्वथा समर्थ है, उसे सूर्योदय में अथवा सूर्यास्त में कोई सन्देह भी नहीं, किसी से आहार-पानी ग्रहण कर लिया, किन्तु आहार-पानी करते समय उस साधक के मन में (बादल धूल आदि के हट जाने से) यह निश्चय हुआ कि अभी सूर्य उदय नहीं हुआ अथवा सूर्य अस्त हो चुका है। उस समय यदि वह साधक, जो मुख में आहार है वह बाहिर निकाल दे और जो हाथ में है उसे छोड़ दे और जो पात्र में है उसे परठ दे तो वह

साधक शासन-पति की आज्ञा का अतिक्रम नही करता अर्थात् उसे रात्रि-भोजन का कोई दोष नही लगता। यदि वह स्वयं उस आहार को करता है अथवा किसी अन्य को देता है तो उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

२४. भिक्खू य उग्गय-वित्तीए अणत्थमिय-संकप्पे संथडिए विइगिच्छासमावन्ने असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा, से जं च मुहे, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे, तं विगिंचमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; तं अप्पणा भुंजमाणे अन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—बृहत्कल्प सूत्र ५।७॥

भिक्षु का संकल्प है कि सूर्योदय से पूर्व तथा सूर्यास्त के पश्चात् वह आहार न करेगा। साधक, शरीर से कष्ट सहन करने मे समर्थ है परन्तु धूल आदि से व मेघाच्छन्न आकाश होने के कारण उसके मन मे तद्विषयक सन्देह है, किसी अन्य से पूछा, उसके कहने पर विश्वास करके आहार ग्रहण कर लिया और उसे करने लगे, तब उस समय साधक को मेघ आदि के हट जाने से ज्ञात हुआ कि अभी तो सूर्योदय नही हुआ अथवा सूर्य अस्त हो चुका है। उस समय यदि वह साधक मुख मे डाला आहार बाहिर निकाल दे, हाथ मे लिया हुआ छोड़ दे और पात्र मे पड़ा परठ दे, तो उस साधक को रात्रिभोजन का कोई दोष नही लगता। किन्तु यदि वह साधक उस समय आहार करता जाता है (कि दोष तो लग ही चुका, आहार कर ही लें) अथवा दूसरे किसी महाव्रती को देवे तो उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

२५. भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे असंथडिए निव्विइगिच्छे असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा

जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा, से जं च मुहे, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे, तं विगिञ्चमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; तं अप्पणा भुंजमाणे अन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥

—बृहत्कल्प सूत्र ५।८॥

सूर्योदय के पश्चात् एवं सूर्यास्त से पूर्व आहार करने की प्रतिज्ञा वाला साधक, रोग के कारण अथवा मार्ग चलने व सेवा करने आदि से शरीर से असमर्थ है परन्तु आहार लेते समय सूर्योदय एवं सूर्यास्त विषयक मन में कोई सन्देह नहीं। आहार ले लिया। उसे करने लगे। आहार करते समय मन में निश्चय हुआ कि सूर्योदय नहीं हुआ अथवा सूर्यास्त हो चुका है। उस समय तत्काल यदि वह साधक मुंह में डाला आहार बाहिर निकाल दे, हाथ का आहार छोड़ दे और पात्र का यत्नपूर्वक परिष्ठापन करदे तो उसे रात्रिभोजन का कोई दोष नहीं लगता, उसे कोई प्रायश्चित नहीं आता किन्तु मन में सूर्योदय एवं सूर्यास्त विषयक निश्चय होने पर भी यदि वह साधक (दोष तो लग ही गया, आहार करना क्यों छोड़ा जाए इत्यादि विचारों से) आहार करता जाए अथवा स्वयं वह आहार न करके किसी दूसरे साधक को देवे तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है॥

२६. भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे असंथडिए विइगिच्छासमावन्ने असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा, से जं च मुहे, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे तं विगिञ्चमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; तं अप्पणा भुञ्जमाणे अन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥

—बृहत्कल्प सूत्र ५।६॥

साधक शासन-पति की आज्ञा का अतिक्रम नही करता अर्थात् उसे रात्रि-भोजन का कोई दोष नही लगता। यदि वह स्वयं उस आहार को करता है अथवा किसी अन्य को देता है तो उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

२४. भिक्खू य उग्गय-वित्तीए अणत्थमिय-संकप्पे सथडिए विइ-गिच्छासमावन्ने असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा, से जं च मुहे, जं च पाणिंसि, ज च पडिग्गहे, त विगिञ्चमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; त अप्पणा भुञ्जमाणे अन्नेसिं वा अणुपदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्ठाणं अणुग्घाइय।

—बृहत्कल्प सूत्र ५।७॥

भिक्षु का सकल्प है कि सूर्योदय से पूर्व तथा सूर्यास्त के पश्चात् वह आहार न करेगा। साधक, शरीर से कष्ट सहन करने मे समर्थ है परन्तु धूल आदि से व मेघाच्छन्न आकाश होने के कारण उसके मन मे तद्विषयक सन्देह है, किसी अन्य से पूछा, उसके कहने पर विश्वास करके आहार ग्रहण कर लिया और उसे करने लगे, तब उस समय साधक को मेघ आदि के हट जाने से ज्ञात हुआ कि अभी तो सूर्योदय नही हुआ अथवा सूर्य अस्त हो चुका है। उस समय यदि वह साधक मुख मे डाला आहार बाहिर निकाल दे, हाथ मे लिया हुआ छोड़ दे और पात्र मे पडा परठ दे, तो उस साधक को रात्रिभोजन का कोई दोष नही लगता। किन्तु यदि वह साधक उस समय आहार करता जाता है (कि दोष तो लग ही चुका, आहार कर ही लें) अथवा दूसरे किसी महाव्रती को देवे तो उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

२५. भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसकप्पे असथडिए निव्विइगिच्छे असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा

जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा, से जं च मुहे, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे, तं विगिञ्चमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; तं अप्पणा भुंजमाणे अन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥

—बृहत्कल्प सूत्र ५।८॥

सूर्योदय के पश्चात् एवं सूर्यास्त से पूर्व आहार करने की प्रतिज्ञा वाला साधक, रोग के कारण अथवा मार्ग चलने व सेवा करने आदि से शरीर से असमर्थ है परन्तु आहार लेते समय सूर्योदय एवं सूर्यास्त विषयक मन में कोई सन्देह नहीं। आहार ले लिया। उसे करने लगे। आहार करते समय मन में निश्चय हुआ कि सूर्योदय नहीं हुआ अथवा सूर्यास्त हो चुका है। उस समय तत्काल यदि वह साधक मुँह में डाला आहार बाहिर निकाल दे, हाथ का आहार छोड़ दे और पात्र का यत्नपूर्वक परिष्ठापन करदे तो उसे रात्रिभोजन का कोई दोष नहीं लगता, उसे कोई प्रायश्चित नहीं आता किन्तु मन में सूर्योदय एवं सूर्यास्त विषयक निश्चय होने पर भी यदि वह साधक (दोष तो लग ही गया, आहार करना क्यों छोड़ा जाए इत्यादि विचारों से) आहार करता जाए अथवा स्वयं वह आहार न करके किसी दूसरे साधक को देवे तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२६. भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे असंथडिए विइगिच्छासमावन्ने असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा, से जं च मुहे, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे तं विगिञ्चमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; तं अप्पणा भुञ्जमाणे अन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥

—बृहत्कल्प सूत्र ५।६॥

पूर्वोक्त प्रतिज्ञा वाला साधक रोग आदि के कारण असमर्थ है और प्रच्छन्नदिशा आदि के कारण सूर्योदयास्त के विषय में सशक भी है परन्तु किसी अन्य के कहने पर विश्वास करके यदि वह साधक आहार ग्रहण कर लेवे और उसे करने लगे। उस समय दिशा निर्मल हो जाने से उस साधक के मन में यह निश्चय हो जाए कि सूर्योदय नही हुआ अथवा सूर्यास्त हो चुका है तो वह साधक तत्काल मुह का भोजन बाहिर निकाल दे, हाथ का छोड दे और पात्र का परठ दे तो उसे रात्रिभोजन का कोई दोष नही लगता, किन्तु वह साधक यह समझ कर कि दोष तो लग ही गया अब क्यों न पूर्ण आहार कर लिया जाए अथवा लाई हुई वस्तु क्यों परठी जाए इत्यादि विचार करते हुए आहार करता ही रहे अथवा स्वय न करके किसी अन्य साधक को आहार करने के लिए दे देवे, तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है॥

२७. इह खलु निग्गथस्स वा निग्गंथीए वा राम्रो वा वियाले वा सपाणे सभोयणे उग्गाले आगच्छेज्जा, त विगिञ्चमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ; त उग्गिलित्ता पच्चोगिलमाणे राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्ठाणं अणुग्घाइय ॥ —बृहत्कल्प सूत्र ५।१०॥

किसी साधक को सूर्यास्त के पश्चात् उग्गाल आजाए तो वह बाहिर थूक दे तो कोई प्रायश्चित्त नही आता किन्तु यदि वह अन्दर ही निगल जाए तो उसे रात्रिभोजन का दोष लगता है और उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है॥

२८. तएणं ते बहवे णिग्गथा य णिग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म, समण भगवं महावीरं वंदइ नमसइ २ तस्स ठाणस्स आलोयंति पडिक्कमंति जाव अहारिह पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जति ॥ —दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र १०।५६॥

तब बहुत से साधु साध्वी, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुखारविन्द से नियाणों का कुफल सुन कर भयभीत हुए, भगवान् को वन्दना नमस्कार की और राजा श्रेणिक और चेल्लणा रानी को देख कर जो निदान किया था उसकी आलोचना निन्दना की और प्रतिक्रमण किया, यावत् उसका यथोचित प्रायश्चित्त तपःकर्म अङ्गीकार किया ॥

इस प्रकार विशिष्ट विषय, कषाय, निद्रा, विकथा और मद रूप प्रमाद* के कारण मूलगुणविषयक चारित्राचार के दोषों के प्रायश्चित्त समझ लेने चाहियें और पाञ्च प्रकार के विशिष्ट प्रमाद के कारण उत्तरगुणसम्बन्धी चारित्राचार के प्रायश्चित्तों का वर्णन इस प्रकार है—

१. जे भिक्खू नितियं पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र २।३३॥

जो साधक प्रमादी बन कर प्रतिदिन एक ही घर से आहार लेता है, मंगवाता है और लाने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है ॥

२. जे भिक्खू नितियं वासं वसइ, वसंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र २।३७॥

जो साधक मास-कल्प व वर्षावास-कल्प का विना विशेष-कारण भंग करता हुआ एक ही स्थान रहता है दूसरे को इस प्रकार रहने की प्रेरणा करता है और रहते हुए को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है ॥

---

* पाञ्च प्रकार के सामान्य प्रमाद के कारण दोषों का तो तीसरा 'तदुभय' प्रायश्चित्त होता है ॥

३. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता तत्थेव आयमइ, आयमंत वा साइज्जइ, त सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइय ॥

—निशीथ सूत्र ४।१०१॥

जो साधक उच्चार-प्रश्रवण परिष्ठापन कर वहीं ही, मल के ऊपर, जल द्वारा शुद्धि करता है तथा करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

४. जे भिक्खू अप्पणो संघाडिं अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सिव्वावेइ, सिव्वावत वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासिय परिहारट्ठाणं उग्घाइय ॥

—निशीथ सूत्र ५।१२॥

जो साधक अपनी चादर, अन्यतीर्थी से अथवा गृहस्थ से सिलवाता है और ऐसा करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है॥

५. जे भिक्खू वत्थं वा पडिग्गहं वा, कबल वा, पायपुच्छणं वा अलं, थिरं, धुवं, धारणिज्जं, पलिच्छिंदिय-पलिच्छिंदिय परिट्ठवेइ, परिट्ठवंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइय ॥

—निशीथ सूत्र ५।६४॥

जो साधक काम देने योग्य स्थिर एव दृढ वस्त्र तथा पात्र आदि को तोड़-फाड़ कर परिष्ठापन करता है करवाता है एवं ऐसा करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है॥

६. जे भिक्खू रयहरणं उस्सीस-मूले ठवेइ, ठवंत वा साइज्जइ तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र ५।७६॥

जो साधक लेटते समय रजोहरण को सिरहाना बनाता है

और ऐसा करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है ॥

७. जे भिक्खू सागारियकुलं अजाणिय, अपुच्छिय, अगवेसिय पुव्वामेव पिंडवाय-पडियाए अणुपविसइ, अणुपविसंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र २।४८॥

जो साधक शय्यातर का घर विना जाने विना पूछे विना पता किये पहले ही गोचरी को जाता है दूसरों को भेजता है और जाने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है ।

८. (क) जे भिक्खू गिहंसि वा, गिहमुहंसि वा, गिहदुवारंसि वा, गिहपडिदुवारंसि वा, गिहेलुयंसि वा (घर की देहली), गिहंगणंसि वा, गिहवच्चंसि वा ।

मडग-गिहंसि वा, मडगच्छारियंसि वा, मडग-थुभियंसि वा, मडग-आसयंसि वा, मडग-लेणंसि वा मडग-थंडिलंसि वा, मडग-वच्चंसि वा ।

इङ्गाल-दाहंसि वा, खार-दाहंसि वा, गाय-दाहंसि वा, तुस-दाहंसि वा, ऊस-दाहंसि वा ।

आययणंसि वा, पंकंसि वा, पणगंसि वा ।

नवियासु वा गोलेहणियासु, नवियासु वा मट्टिया-खाणीसु, परिभुञ्जमाणियासु वा अपरिभुञ्जमाणियासु वा ।

उंबर-वच्चंसि वा, नग्गोह-वच्चंसि वा, आसत्थ-वच्चंसि वा ।

इक्खु-वणंसि वा, सालि-वणंसि वा, कुसुम-वणंसि वा, कप्पास-वणंसि वा ।

मडाग-वच्चंसि वा, साग-वच्चंसि वा, मूलय-वच्चंसि वा, कोत्थुंवरि-वच्चंसि वा, खार-वच्चंसि वा, जीरिय-वच्चंसि वा, दमणग-वच्चंसि वा, मरुगवच्चंसि वा ।

असोग-वणंसि वा, सत्तिवण्ण-वणंसि वा, चपग वणंसि वा, चूय-वणंसि वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु पत्तोवएसु पुप्फोवएसु फलोवएसु बीओवएसु उच्चार पासवण परिट्ठवेइ परिट्ठवंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइय ॥ —निशीथ सूत्र ३।७०से७८॥

जो साधक निम्नलिखित अयोग्य स्थानों पर उच्चार प्रश्रवण करता है और करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है। वे स्थान इस प्रकार है—

घर मे, घर की डचोढी मे, घर के बडे द्वार मे, घर के अन्दर के द्वार मे, घर की पोल मे, घर के आगन मे, घर के दिशा-मात्र के स्थान मे, श्मशान मे, मृतक की जहा भस्म पड़ी हो, मृतक का जहा स्तूप हो, जो मृतक के रखने का स्थान हो, जहा मृतक की छत्री आदि बनाई हुई हो, श्मशान की पूरी सीमा मे और श्मशान की आस-पास की भूमि मे।

कोयले बनाने का स्थान, सज्जी आदि क्षार बनाने का स्थान, बैल आदि पशु के डाम देने का स्थान, घास जलाने का स्थान, खडी दूब का जला हुआ स्थान।

थोडे पानी के तालाब मे, कीचड वाले स्थान मे, काई वाले स्थान में।

ताजी हल चली हुई भूमि में; जिस में मिट्टी खोदी जाती है ऐसी खदान मे चाहे वहा पर किसी ने पहले उच्चार प्रश्रवण किया हो अथवा नही किया हो।

जहां गुल्लर के फल पड़े हो, वड़ के फल पडे हों, पीपल के फल पडे हो।

इक्षु का खेत, धान्य का खेत, कुसुम्भ का खेत, कपास का खेत।

मडाग वनस्पति का स्थान, मूलक वनस्पति का स्थान, कौस्तुम्भ वनस्पति का स्थान, शोरे वाला स्थान, जहाँ जीरी वोई हुई हो, दमनक वनस्पति का स्थान, मरोचन वनस्पति का स्थान।

अशोक वृक्ष का वन, सप्तपर्ण वृक्ष का वन, चंपक वृक्ष का वन, आम्र वन और भी वृक्षों के वन जो पत्र सहित, फूल सहित, फल सहित और बीज सहित हों ॥

(ख) जे भिक्खू आगन्तारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइ-कुलेसु वा परियावसहेसु वा।

उज्जाणंसि वा उज्जाण-गिहंसि वा, उज्जाण-सालंसि वा; निज्जाणंसि वा, निज्जाण-गिहंसि वा, निज्जाण-सालंसि वा।

अट्टंसि वा, अट्टालयंसि वा, चरियंसि वा, पागारंसि वा, दारंसि वा, गोपुरंसि वा।

दगंसि वा, दग-मग्गंसि वा, दग-पहंसि वा, दग-मालंसि वा, दग-तीरंसि वा, दग-ट्ठाणंसि वा।

सुन्न-गिहंसि वा, सुन्न-सालंसि वा; भिन्न-गिहंसि वा, भिन्न-सालंसि वा; कूडागारंसि वा, कोट्ठागारंसि वा।

तण-गिहंसि वा, तण-सालंसि वा; तुस-गिहंसि वा तुस-सालंसि वा; भुस-गिहंसि वा, भुस-सालंसि वा।

जाण-सालंसि वा, जाण-गिहंसि वा; जुग्गसालंसि वा, जुग्ग-गिहंसि वा।

पणिय-सालंसि वा, पणिय-गिहंसि वा; परिया-सालंसि वा, परिया-गिहंसि वा; कुविय-सालंसि वा, कुविय-गिहंसि वा।

गोण-सालंसि वा, गोण-गिहंसि वा; महाकुल-गिहंसि वा, महाकुल-

सालसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवंतं वा साइज्जइ, त सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १५।६६से७४॥

पथिकाश्रम (मुसाफिरखाना), वाटिका का घर (बंगला), गृहस्थ के रहने का मकान, तापसो का आश्रम।

उद्यान, उद्यान का घर, उद्यान की पडसाल, लोगो के निकलने का मार्ग, मार्ग का घर, मार्ग की पडसाल।

कोट, कोट की अट्टालिका (प्रतिकोट), कोट की फिरनी, कोट का बुर्ज, कोट की खिड़की, नगर का द्वार।

पानी का स्थान, पानी लाने का मार्ग, नहर, दगमाल=पानी का ऊंचा स्थान, पानी का किनारा, पानी के लिये बनाया गया स्थान।

शून्य गृह, शून्य शाला, फूटा घर, फूटी शाला, कूटाकार (पर्वत-शिखर के आकार वाला घर), धान्य आदि का कोठार।

घास का घर (झोपडी), घास की शाला (विशाल स्थान); तुस का घर, तुस की शाला; भूसे का घर, भूसे की शाला।

(रथ) यान शाला, यानगृह, (छकडा) शकटशाला, शकटगृह।

किरयाने की दुकान, किरयाने के माल भरने का घर, लोहशाला, लोह-गृह, कबाड़-शाला, कबाड-गृह।

बैलो की शाला, बैलो का घर; बड़े लोगों के घर, बड़े लोगों की बैठक।

इन स्थानो मे जो साधक उच्चार प्रश्रवण परिष्ठापन करता है और करते हुए अन्य साधको को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है॥

६. जे भिक्खू रन्नो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं दुवारिय-भत्तं वा, पसु-भत्तं वा, भयग-भत्तं वा, बल-भत्तं वा, कयग-भत्तं वा, हय-भत्तं वा, गय-भत्तं वा, कन्तार-भत्तं वा, दुब्भिक्ख-भत्तं वा, दमग-भत्तं वा, गिलाण-भत्तं वा, वद्दलिया-भत्तं वा, पाहुण-भत्तं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गहंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र ९।६॥

क्षत्रिय राजा के अभिषेक के उत्सव पर बनाए गए भोजन के द्वारपाल के भाग में से, पशु जानवरों के भाग में से, नौकरों के भाग में से, देवता के निमित्त बलिदान के भाग में से, घर के दास दासियों के भाग में से, अश्व भाग, गज भाग, अटवी वालों के भोजन में से, दुर्भिक्ष के निमित्त बनाए गए भोजन में से, भिखारियों के लिए बनाए गए भोजन में से, रोगियों के लिए बनाए गए भोजन में से, वर्षा कराने के निमित्त दिए जाने वाले भोजन में से, और पाहुणे के भोजन में से जो साधक ग्रहण करता है और ग्रहण करने वालों को अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१०. जे भिक्खू वहिया-जत्ता-संपठियाणं, वहिया-जत्ता-पडिणियत्ताणं; नइ-जत्ता-संपट्ठियाणं, नइ-जत्ता-पडिणियत्ताणं; गिरि-जत्ता-संपट्ठियाणं, गिरि-जत्ता-पडिणियत्ताणं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गहंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र ९।१२से१७॥

जो साधक, नदी-यात्रा, पर्वत-यात्रा तथा वर-यात्रा आदि अन्य यात्रा को जाते अथवा यात्रा से लौटते हुओं से आहार पानी ग्रहण करता है और ग्रहण करने वालों को अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

११. जे भिक्खू परं बीभावेइ, बीभावंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू परं विम्हावेइ, विम्हावंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ, चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र ११।६४,६७॥

जो साधक दूसरो को भय दिखाता है एवं उन्हें विस्मय मे डालता है और इसे अच्छा समझता है तो उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१२. जे भिक्खू गिहि-मत्ते भुंजइ, भुंजतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र १२।१०॥

जो साधक गृहस्थ के पात्र मे आहार करता है और करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१३. जे भिक्खू अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा उवहिं वहावेइ, वहावंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र १२।४०॥

जो साधक अन्यतीर्थी तथा गृहस्थ को अपना सामान उठवाता है और उठवाने वालो को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१४. जे भिक्खू महानईओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वंजियाओ अंतो-मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरइ वा संतरइ वा, उत्तरंतं वा संतरंतं वा साइज्जइ, तं जहा—गंगा, जउणा, सरऊ, एरावई, मही, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १२।४१॥

जो साधक एक मास के अन्दर दो बार बडी नदियों से उतरे एव उन्हे पार करे और ऐसा करने वाले को अच्छा समझे तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१५. जे भिक्खू अट्टाए अप्पाणं देहइ, देहंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र १३।२१॥

जो साधक शीशे में अपना मुख देखता है और इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

१६. जे भिक्खू विज्जापिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ; जे भिक्खू मंत-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र १३।७०,७१॥

जो साधक विद्या सिखा कर तथा मन्त्र बताकर आहार ग्रहण करता है और ग्रहण करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१७. जे भिक्खू विवण्णं पडिग्गहं वण्णमंतं करेइ, करंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १४।११॥

जो साधक अपने पात्रों को रंग-विरंगे बनाता है, बनवाता है एवं ऐसा करने वालों को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१८. जे भिक्खू अन्नउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ; वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुच्छणं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १५।७५,७६॥

जो साधक अन्यतीर्थी तथा गृहस्थ को आहार पानी, वस्त्र पात्र, कम्बल एवं रजोहरणी देता है अन्य साधु से दिलवाता है और देने वाले साधु को अच्छा समझता है तो उसे लघु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१९. जे भिक्खू विभूसा-पडियाए वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबल वा, पायपुच्छणं वा अन्नयरं वा उवगरण-जायं धरेइ, धरंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइय ॥

—निशीथ सूत्र १५।१५३॥

जो साधक विभूषा के लिये वस्त्र पात्र आदि कोई उपकरण रखता है और रखने वाले साधु को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२०. जे भिक्खू अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा साइज्जइ; संबाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संबाहंतं वा पलिमद्दंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइय ॥

—निशीथ सूत्र १५।१३,१४॥

जो साधक अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से अपने पाँव साफ करवाता है तथा उन से दबवाता है और ऐसा करवाने वाले अन्य साधको को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२१. जे भिक्खू अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि गंडं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं आच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, आच्छिंदित्ता विच्छिंदित्ता पूय वा सोणियं वा नीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, नीहरित्ता विसोहेत्ता सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलित्ता पधोइत्ता अन्नयरेणं आलेवण-जाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपित्ता विलिंपित्ता तेल्लेण वा, घएण वा, वसाए वा, नवणीएण वा, अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगित्ता मक्खित्ता अन्नयरेण धूवण-जाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, धूवंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र १५।२६॥

जो साधक, अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से अपने शरीर में उत्पन्न गुम्वड़, मेद, फुन्सी, मस्सा=हर्ष, भगंदर, (मोतिया-विन्दु) आदि को किसी तीक्ष्ण शस्त्र से एक वार छेदावे अथवा वारम्वार छेदावे, एक वार अथवा वारम्वार छिदवा कर उस की पीप रक्तादि निकलवा कर विशुद्ध करावे, विशुद्ध कराकर सचित्त अथवा अचित्त जल द्वारा एक वार धुलवाए अथवा वारम्वार धुलवाए, फिर मल्लम लगवाए, वारम्वार लगवाए, किसी द्रव्य से अभ्यङ्गन मर्दन करवाए, और उसे एक वार धूप दिलवाए अथवा वारम्वार धूप दिलवाए, इस प्रकार जो कोई साधक करवाता है और उसे अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२२. जे भिक्खू जायणा-वत्थं वा निमंतणा-वत्थं वा अजाणिय अपुच्छिय अगवेसिय पडिग्गाहेइ, पडिग्गहंतं वा साइज्जइ तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। से य वत्थे चउण्हं अन्नयरे सिया, तं जहा—निच्च-नियंसणिए, मज्जणिए, छणुसविए, राय-दुवारिए ॥

—निशीथ सूत्र १५।६६॥

जो साधक, स्वयं की याचना के वस्त्र अथवा पर की निमन्त्रणा के वस्त्र को विना जाने विना पूछे विना खोज किये कि यह वस्त्र गृहस्थ के सदैव धारण करने का तो नहीं, स्नान के लिये धारण करने का तो नहीं, किसी विशेष अवसर पर या उत्सव के समय पहनने का और राज दरबार में जाते धारण करने का तो नहीं—यूहीं ग्रहण करता है और ग्रहण करते हुए को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ॥

२३. जे भिक्खू अन्नउत्थीहिं वा गारत्थीहिं वा आवेढिय-परिवेढिय भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १६।२७॥

१६. जे भिक्खू विभूसा-पडियाए वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुञ्छणं वा अन्नयरं वा उवगरण-जायं धरेइ, धरंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १५।१५३॥

जो साधक विभूषा के लिये वस्त्र पात्र आदि कोई उपकरण रखता है और रखने वाले साधु को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२०. जे भिक्खू अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा साइज्जइ, संबाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संबाहंतं वा पलिमद्दंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १५।१३,१४॥

जो साधक अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से अपने पाँव साफ करवाता है तथा उन से दबवाता है और ऐसा करवाने वाले अन्य साधकों को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२१. जे भिक्खू अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं आच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, आच्छिंदित्ता विच्छिंदित्ता पूयं वा सोणियं वा नीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, नीहरित्ता विसोहित्ता सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलित्ता पधोइत्ता अन्नयरेणं आलेवण-जाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपित्ता विलिंपित्ता तेल्लेण वा, घएण वा, वसाए वा, नवणीएण वा, अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगित्ता मक्खित्ता अन्नयरेण धूवण-जाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, एवं करेंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र १५।२६॥

जो साधक, अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से अपने शरीर में उत्पन्न गुम्बड़, मेद, फुन्सी, मस्सा=हर्ष, भगंदर, (मोतिया-विन्दु) आदि को किसी तीक्ष्ण शस्त्र से एक वार छेदावे अथवा वारम्वार छेदावे, एक वार अथवा वारम्वार छिदवा कर उस की पीप रक्तादि निकलवा कर विशुद्ध करावे, विशुद्ध कराकर सचित्त अथवा अचित्त जल द्वारा एक वार धुलवाए अथवा वारम्वार धुलवाए, फिर मल्लम लगवाए, वारम्वार लगवाए, किसी द्रव्य से अभ्यङ्गन मर्दन करवाए, और उसे एक वार धूप दिलवाए अथवा वारम्वार धूप दिलवाए, इस प्रकार जो कोई साधक करवाता है और उसे अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२२. जे भिक्खू जायणा-वत्थं वा निमंतणा-वत्थं वा अजाणिय अपुच्छिय अगवेसिय पडिग्गाहेइ, पडिग्गहंतं वा साइज्जइ तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। से य वत्थे चउण्हं अन्नयरे सिया, तं जहा—निच्च-नियंसणिए, मज्जणिए, छणुसविए, राय-दुवारिए ॥

—निशीथ सूत्र १५।६६॥

जो साधक, स्वयं की याचना के वस्त्र अथवा पर की निमन्त्रणा के वस्त्र को विना जाने विना पूछे विना खोज किये कि यह वस्त्र गृहस्थ के सदैव धारण करने का तो नहीं, स्नान के लिये धारण करने का तो नहीं, किसी विशेष अवसर पर या उत्सव के समय पहनने का और राज दरवार में जाते धारण करने का तो नहीं—यूहीं ग्रहण करता है और ग्रहण करते हुए को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ॥

२३. जे भिक्खू अन्नउत्थीहिं वा गारत्थीहिं वा आवेढिय-परिवेढिय भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र १६।३७॥

जो साधक प्रमाद में पड़ा रह कर, आस-पास अन्यतीर्थी एव गृहस्थो के आने-जाने के स्थान मे आहार-पानी करता है और ऐसे स्थान पर आहार-पानी करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२४. जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा उसिणुसिणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गहंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —निशीथ सूत्र १७।१३१॥

जो साधक, अत्युष्ण से भी अधिक गरमागरम आहार-पानी ग्रहण करता है, और इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२५. जे भिक्खू सागारिय-पिंडं गिण्हइ, गिण्हंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥

—निशीथ सूत्र २।३६॥

जो साधक शय्यातर का आहार ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने को कहता है या इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है ॥

२६. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सागारिय-पिंडं बहिया नीहडं असंसट्ठं संसट्ठं करेत्तए। जे खलु निग्गंथे वा निग्गंथी वा सागारियपिंडं बहिया नीहडं असंसट्ठं संसट्ठं करेइ करेंतं वा साइज्जइ, से दुहओ वीइक्कम-माणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥

—बृहत्कल्प सूत्र २।१८॥

शय्यातर के घर के आहार मे से बाहिर निकाला हुआ अंश जो कि अभी तक दूसरे के अधिकार मे नही हुआ और उसके आहार मे नही मिला लिया गया, तो वह शय्यातर के आहार का अंश साधु-साध्वी को ग्रहण करना नही कल्पता।

जो साधु-साध्वी उसे ग्रहण करने के लिये उस अंश को सम्मिश्रण करावे, और साधु-साध्वी को देने के निमित्त सम्मिश्रण करने वाले को अच्छा समझे (साधु-साध्वी सम्मिश्रण किये गए आहार को ग्रहण करे) तो वह तीर्थंकर देव और मालिक दोनों की आज्ञा का उल्लङ्घन करता है और उसे गुरुचौमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२७. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा साइमं वा पढमाए पोरुसीए पडिग्गाहेत्ता पच्छिमं पोरुसिं उवाइणावेत्तए। से य आहच्च उवाइणाविए सिया, तं नो अप्पणा भुंजेज्जा नो अन्नेसिं अणुप्पदेज्जा; एगंते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया। तं अप्पणा भुंजमाणे, अन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —बृहत्कल्प सूत्र ४·११॥

साधक, प्रथम प्रहर का लिया हुआ आहार चतुर्थ प्रहर में न रखे, यदि रह जाए तो उसे न स्वयं खाए और न किसी अन्य साधक को खाने के लिये देवे अपितु एकान्त प्रासुक स्थान को देख कर साफ करके यत्नपूर्वक उस आहार को परठ देवे। यदि वह साधक उस आहार को स्वयं करता है अथवा अन्य को देता है तो उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ॥

२८. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, परं अद्धजोयणमेराए उवाइणावेत्तए। से य आहच्च उवाइणाविए सिया, तं नो अप्पणा भुंजेज्जा नो अन्नेसिं अणुप्पदेज्जा; एगंते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया। तं अप्पणा भुंजमाणे, अन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥ —बृहत्कल्प सूत्र ४।१२॥

साधक, आहार-पानी को अर्द्धयोजन (पोने पाञ्च माइल) से

आगे न ले जाए। यदि ले जाया गया हो तो उसे न स्वय खाए और न अन्य को खाने के लिये देवे अपितु एकान्त प्रासुक निर्दोष स्थान मे यत्नपूर्वक परठ देवे। जो साधक उस आहार को स्वय करता है अथवा अन्य को खाने के लिये देता है तो उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है॥

इसी प्रकार अनेको उत्तरगुणों के प्रायश्चित्त समझ लेने चाहियें। ये चारित्र-विषयक दोषों के प्रायश्चित्त हैं।

ये विशिष्ट प्रमाद के कारण ज्ञान दर्शन एव चारित्र मे लगे दोषो के प्रायश्चित्त कथन किये गए है।

जिस छेद प्रायश्चित्ती को छेद प्रायश्चित्त मे श्रद्धा नहीं, या जिसे अपनी पर्याप्त दीक्षापर्याय का गर्व है—'छेद प्रायश्चित्त हो जाने पर भी मैं किसी से छोटा नहीं होऊगा' तथा किसी आचार्य आदि को छेद प्रायश्चित्त आने पर अन्य साधको मे उन की लघुता होती हो तो, इन सब को छेद के स्थान पर तप प्रायश्चित्त दिया जाता है। यह 'तप' नामक छट्ठे प्रायश्चित्त का वर्णन है॥

७. छेद—

यः षण्मासक्षमकोऽन्यो वा विकृष्टतपःकरणसमर्थस्तपसा गर्वितो भवति यथा किं ममानेन प्रभूतेनापि तपसा क्रियत इति, तपःकरणासमर्थो वा ग्लानाऽसहबालवृद्धादिः, तथाविधतपःश्रद्धानरहितो वा, निष्कारणतोऽपवादरुचिर्वा भवति तस्य छेदः प्रायश्चित्तं, अहोरात्र-पञ्चक-दशकादिक्रमेण पर्यायच्छेदः क्रियत इति भावः॥

छेद प्रायश्चित्त के अधिकारी निम्न व्यक्ति होते हैं—

(१) जो साधक अधिकाधिक तप करने में समर्थ है और जिसे तपस्या करने का अभिमान है कि तेले चौले की क्या वात है यह तो मैं वातों २ में किये देता हूं—ऐसे व्यक्ति को 'तप' प्रायश्चित्त के स्थान पर 'छेद' प्रायश्चित्त दिया जाता है।

(२) जो साधक तपस्या करने में सर्वथा असमर्थ है तो उसे भी तप प्रायश्चित्त के स्थान पर 'छेद' प्रायश्चित्त दिया जाता है।

(३) रोगी व्यक्ति को 'तप' प्रायश्चित्त न देकर 'छेद' प्रायश्चित्त दिया जाता है।

(४) अल्प-व्यसक को भी 'तप' प्रायश्चित्त न देकर 'छेद' प्रायश्चित्त दिया जाता है।

(५) वृद्धावस्था के साधक को तप-प्रायश्चित्त के स्थान पर छेद-प्रायश्चित्त दिया जाता है।

(६) जिसे तप-प्रायश्चित्त की शुद्धि में श्रद्धा नहीं उसे भी तप-प्रायश्चित्त न देकर, छेद-प्रायश्चित्त दिया जाता है।

(७) जो साधक, विना कारण अपवाद-मार्ग का सेवन करता है, उसे यह छेद प्रायश्चित्त दिया जाता है।*

तात्पर्य यह है कि ऊपरोक्त पहले छ प्रकार के प्रायश्चित्तियों को तो तप-प्रायश्चित्त ही आता था परन्तु मानसिक एवं शारीरिक

* मूल प्रायश्चित्त से कुछ न्यून दोष वाले को भी छेद प्रायश्चित्त दे दिया जाता है। वैसे पृष्ठ १५ पर तीसरी श्रेणी के उत्कृष्ट तप-प्रायश्चित्त में भी छेद प्रायश्चित्त है परन्तु वह केवल १२० दिन तक का है, इस से अधिक छेद ऊपरोकानुसार समझना चाहिये।

अवस्था की अशक्तता के कारण उसे तप प्रायश्चित्त न देकर छेद-प्रायश्चित्त दिया गया, ये बदल के प्रायश्चित्त हुए। किसी प्रायश्चित्त का बदल न होकर छेद प्रायश्चित्त उसे आता है जो विना कारण अपवाद-मार्ग का आसेवन करता है॥

उत्सर्ग-मार्ग और अपवाद-मार्ग का क्या वास्तविक स्वरूप है? और इस के किस प्रकार प्रायश्चित्त होते है? ये सब बातें इस प्रकार जाननी चाहियें—

उत्सर्ग का अर्थ है—'उत्सृज्य विशेष-प्रसङ्गान् यः सामान्य-नियमः स उत्सर्गः।' हीनतर तथा उच्चतर विशेषप्रसङ्गों को छोडकर जो सामान्य विधि होती है उसे उत्सर्ग-मार्ग कहते हैं और जो असामान्य अवस्था मे आचरण किया जाए उसे अपवाद-मार्ग कहते हैं।

उच्चतर विशेषप्रसङ्गों के अपवाद—

(१) वेश्या के सानिध्य मे वास नही करना * यह उत्सर्ग-मार्ग है, किन्तु स्थूलभद्र जी महाराज ने वेश्या के घर चातुर्मास किया। उन की आत्मा विशेष बलवान थी इस लिये यह अपवाद-रूप था।

(२) कोई साधक सहसा बारहवीं पडिमा धारण नही करता यह सामान्य नियम उत्सर्ग-विधि है परन्तु श्री गजसुकुमार जी महाराज ने दीक्षा लेते ही बारहवी पडिमा का वाहन किया और अपने लक्ष्य की प्राप्ति की। उन में विशिष्ट आत्मशक्ति होने के कारण यह अपवाद-विधि थी।

---

* न चरेज्ज वेस-सामते, बंभचेरवसाणुए।
बंभयारिस्स दंतस्स, होज्जा तत्थ विसोत्तिआ॥

—दशवैकालिक सूत्र ५।१।६॥

(३) अनार्य क्षेत्र में विहार नहीं करना यह उत्सर्ग-मार्ग है परन्तु विशेष साधन के लिये अनार्य क्षेत्र में विहार किया भी जाता है जो कि अपवाद-रूप है।[1]

(४) नदी के तीर पर प्रासुक जल भी नहीं पिया जाता; क्योंकि कच्चे पानी की आशंका का व्यवहार हो जाता है।[2]

(५) ज्येष्ठ आषाढ की तीव्र उष्णता में रात्रि को गिरने वाली ओस भस्म हो जाती है परन्तु महाव्रती साधक बारह ही महीने रात्रि को छाया से बाहिर जाते समय अपने शरीर को ढाँपता है॥

हीनतर प्रसङ्गों के अपवाद[3]—

(१) साधक सचित्त जल का संघट्टन नहीं करता यह उत्सर्ग-मार्ग है परन्तु अन्य मार्ग न होने पर घुटनों से नीचे

१. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पुरत्थिमेणं जाव अंगमगहाओ एत्तए, दक्खिणेणं जाव कोसम्बीओ एत्तए, पच्चत्थिमेणं जाव थूण-विसयाओ एत्तए, उत्तरेणं जाव कुणाल-विसयाओ एत्तए। एयावयाव कप्पइ, एयावयाव आरिए खेत्ते; नो से कप्पइ एत्तो बाहिं। तेण परं, जत्थ नाण-दंसण-चरित्ताइं उस्सप्पंति॥ —बृहत्कल्प सूत्र १।५१॥

२. नो कप्पइ णिग्गंथाण वा निग्गंथीण वा दग-तीरंसि चिट्ठित्तए वा, निसीइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा, निद्दाइत्तए वा, पयलाइत्तए वा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारमाहारेत्तए, उच्चारं वा, पासवणं वा, खेलं वा, सिंघाणं वा परिट्ठवेत्तए, सज्झायं वा करेत्तए, झाणं वा झाइत्तए, काउसग्गं वा, ठाणं वा ठाइत्तए॥

—बृहत्कल्प सूत्र १।१६॥

३. उद्यतः सर्गः=विहारः उत्सर्गः। तस्य उत्सर्गस्य प्रतिपक्षोऽपवादः। स च द्रव्यक्षेत्रकालभावानुसारेण ज्ञानदर्शनचारित्रावलम्बनेन भवति॥

पानी मे से यत्नपूर्वक चल कर और अधिक गहरे पानी को नौका द्वारा पार किया जाता है, यह अपवाद-रूप है।

(२) वर्षा पडते साधक छाया से बाहिर नही निकलता यह उत्सर्ग-मार्ग है परन्तु लघु-शङ्कादि की निवृत्ति के लिये जाना पड जाता है जो कि अपवाद-रूप है।

(३) आहार देते समय गृहस्थ छ काया मे से किसी की यदि विराधना करे तो आहार नही लिया जाता और वह घर उस दिन के लिये असूझता माना जाता है यह उत्सर्ग-नियम है, किन्तु आज-कल आहार देता हुआ गृहस्थ यदि उघाडे मुख बोलता है तो वह वायुकाय के जीवो की विराधना करता है परन्तु वह घर असूझता नही माना जाता यह अपवाद-रूप है।*

(४) गोचरी के लिये छत पर चलते छत हिलती है और छत पर सचित्त जल वनस्पति आदि भी हिलती है, किन्तु इसका दोष नही माना जाता। यह अशक्य-परिहार-रूप अपवाद है।

(५) साधु महाराज को देने के विचार से कोई वस्तु एकान्त मे सुरक्षितरूप से रख देना और साधु महाराज को बहराना यह 'स्थापना' दोष है, परन्तु आज-कल बरतनो के धोवन का प्रासुक जल इस प्रकार स्थापन किया हुआ लिया जाता है—यह अपवादरूप मान लिया गया है।

(६) चिकित्सा न करना यह उत्सर्गमार्ग है परन्तु प्रासुक चिकित्सा कर लेना यह अपवादमार्ग है।

(७) साधक नग्न पाद से विहार करते है परन्तु पक्की

* जिस नियम का द्रव्य क्षेत्र काल और भाव के अनुरूप किसी से भी पालन नहीं होता हो तो उसे अशक्य-परिहार मान कर अपवाद कोटि में ले लिया जाता है॥

तारकोल की सड़क पर पादतल घिस जाने और रक्त निकल आने की सम्भावना होने पर, पाँव को कपड़ा बांध कर चलना अपवाद-रूप है।

(८) वृद्धत्व एवं रोगादि के कारण साधु महाराज का यष्टि-धारण करना यह अपवादरूप है परन्तु सादारूप में—रंग-विरंगी यष्टि न रखे।

(९) चातुर्मास-काल में साधक-जन विहार नहीं करते यह उत्सर्ग नियम है परन्तु दस कारणों से विहार किया जा सकता है।[1]

(१०) साधु महाराज अन्तःपुर में नहीं जाते परन्तु अपवादरूप में पाञ्च कारणों से जा सकते हैं।[2]

---

१. णो कप्पइ णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीणं वा पढम-पाउसंसि गामाणुगामं दूइज्जित्तए; पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ तंजहा—भयंसि वा १, दुब्भिक्खंसि वा २, पव्वाहेज्जवणं कोई ३, उदयोघंसि एज्जमाणंसि ४, महता वा अणारिएहिं वासावासं पज्जोसवित्ताणं ५। णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा गामाणुगामं दूइज्जित्तए; पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ तं जहा—णाणट्ठयाए ६, दंसणट्ठयाए ७, चरित्तट्ठयाए ८, आयरिय उवज्झाए वा से वीसुंभेज्जा ९, आयरिय-उवज्झायाणं वा वहिया वेयावच्चकरणयाए १०॥

—ठाणांग सूत्र ५।२।१॥

२. पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे रायंतेउरमणुपविसमाणे नाइक्कमः तं जहा—णगरे सिया सव्वओ समंता गुत्ते गुत्तदुवारे बहवे समण-माहण णो संचाएइ भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ते विणवणट्ठयाए रायंतेउरमणुपविसेज्जा १, पाडिहारिए वा पीढ-फलग-सेज्ज संथारगं पच्चप्पिणमाणे रायंतेउरमणुपविसेज्जा २, हयस्स वा, गयर वा, दुट्ठस्स आगच्छमाणस्स भीए रायंतेउरमणुपविसेज्जा ३, परो वा

(११) जिस उपाश्रय में रात्रि-भर ज्योति जलती रहे उस उपाश्रय में साधक नही ठहरा करते परन्तु अन्य स्थान उपलब्ध न होने पर एक दो रात्रि पर्यन्त उस स्थान में ठहरा जा सकता है।[१]

(१२) साधक गृहस्थ के रहने के मकान मे अल्पकाल भी न ठहरे परन्तु वृद्धत्व, रोग और तपस्या के कारण ठहर सकता है।[२]

(१३) साधक गोचरी को जाते समय लघुशङ्कादि से युक्त न हो, यदि रास्ते में बाधा हो ही जाए तो स्थान के स्वामी की आज्ञा लेकर प्रासुक स्थान देख कर निवृत्त हो सकता है।[३]

सहसा वा बलसा वा बाहाए गहाय रायंतेउरमणुपविसेज्जा ४, बहिया वणं आरामगयं वा उज्जाणगयं वा रायंतेउरजणो सव्वओसमंता सपरिक्खित्ताणं निविसेज्जा ५, इच्चेहिं पचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे रायंतेउरमणुपविसमाणे नाइक्कमइ ॥

—ठाणांग सूत्र ५।२।१।

१. उवस्सयस्स अंतोवगडाए सव्वराइए जोई झियाएज्जा, नो कप्पइ निग्गंथाण वा णिग्गथीण वा अहालन्दमवि वत्थए। हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगराय वा दुराय वा वत्थए॥

—बृहत्कल्प सूत्र २।६।

२. तिण्हमन्नयरागस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ।
जराए अभिभूअस्स, वाहिअस्स तवस्सिणो॥

—दशवैकालिक सूत्र ६।६०॥

३. गोअरग्गपविट्ठो अ, वच्चमुत्तं न धारए।
ओगासं फासुअं नच्चा, अणुन्नविय वोसिरे॥

—दशवैकालिक सूत्र ५।१।१९।

(१४) महाव्रती साधक भिक्षा ला कर अपने उपाश्रय में चुकाते हैं परन्तु कोई वृद्ध, रोगी और तपस्वी शरद् आदि ऋतु में, स्थान के स्वामी की आज्ञा लेकर वहीं भी चुका सकता है।[1]

(१५) साधक लोग एक वार भिक्षा लाकर उसी समय दूसरी वार नहीं जाया करते, परन्तु लाए गए आहार द्वारा निर्वाह न होने पर यदि किसी से क्षुधा सहन नहीं होती हो तो दूसरी वार भी जा सकता है।[2]

(१६) अन्य मार्ग न होने पर विषम-मार्ग से चलते यदि पाँव फिसल जाए तो टहनी आदि का अवलम्बन ले सकता है।[3]

---

१. सिया अ गोअरग्गगओ, इच्छिज्जा परिभुत्तुअं।
कुट्ठगं भित्तिमूलं वा, पडिलेहित्ताण फासुअं॥
—दशवैकालिक सूत्र ५।१।८२॥

२. (क) सेज्जा निसीहियाए, समावन्नो अ गोअरे।
अयावयट्ठा भुच्चाणं, जइ तेणं न संथरे॥
तओ कारणसमुप्पण्णे, भत्तपाणं, गवेसए।
विहिणा पुव्वउत्तेणं, इमेणं उत्तरेण य॥
—दशवैकालिक सूत्र ५।२।२,३॥

(ख) निग्गंथीए य गाहावइ-कुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठाए अन्नयरे पुलागभत्ते पडिग्गाहिए सिया। सा य संथरेज्जा, एवं से कप्पइ तेण एव भत्तट्ठेणं पज्जोसवेत्तए; सा य नो संथरे, एवं से कप्पइ दोच्चं पि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खिमित्तए वा पविसित्तए वा॥
—वृहत्कल्प सूत्र ५।५४॥

३. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा

(१७) प्रथम प्रहर मे लाई गई वस्तु चतुर्थ प्रहर मे सेवन नही की जाती परन्तु रोग अवस्था मे औषध आदि ले ली जाती है।*

(१८) एक कल्प-काल से अधिक समय तक एक स्थान पर साधक नही ठहरा करते परन्तु अपवाद रूप मे वृद्धावस्था, रुग्णावस्था तथा तपस्यादि के कारण कल्प से अधिक समय के लिये ठहरा भी जाता है।

से वप्पाणि वा, फलिहाणि वा, पागाराणि वा, तोरणाणि वा, अग्गलाणि वा अग्गल-पासगाणि वा, गड्डाओ वा, दरीओ वा, सति परक्कमे सजयामेव परक्कमेज्जा णो उज्जुय गच्छेज्जा केवली बूया "आयाणमेय" से तत्थ परक्कममाणे पयलेज्ज वा, पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलेमाणे पवडेमाणे रुक्खाणि वा, गुच्छाणि वा, गुम्माणि वा, लयाओ वा, वल्लीओ वा, तणाणि वा, गहणाणि वा, हरियाणि वा, अवलबिय २ उत्तरेज्जा, जे तत्थ पाडिपहिया उवागच्छति, ते पाणी जाएज्जा तओ संजयामेव अवलबिय २ उत्तरेज्जा तओ गामाणुगाम दूइज्जेज्जा ॥

—आचाराङ्ग सूत्र १२।२।१४॥

यह अल्पदोष, महादोषों को दूर करने के लिये है। जैसे कि वहा से गिर कर कहीं गिरते परिणामो मे काल करके वह साधक दुर्गति मे न चला जावे और यदि काल भी न करे तो गिरने से त्रस-जीवों की हिंसा हो तथा उस की अपनी हड्डी पसली टूट जाए तत्पश्चात् दवाई बूटी एवं अप्रेशन आदि मे महा आरम्भ समारम्भ हो इत्यादि महादोषो से बचने के लिये यह अल्पदोषसेवन का वर्णन है॥

* नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा पारियासियस्स आहारस्स जाव तयप्पमाणमेत्तमवि भूइप्पमाणमेत्तमवि बिंदुप्पमाणमेत्तमवि आहारमाहारेत्तए, नन्नत्थ आगाढेहिं रोगायकेहि ॥

—बृहत्कल्प सूत्र ५।४६॥

(१९) नवमें तथा दशवें प्रायश्चित्त वाले को गृहस्थी बना कर नई दीक्षा दी जाती है किन्तु विशेषावस्था में गण की प्रतीति के लिये बिना गृहस्थी बनाए भी नई दीक्षा देकर नवमां तथा दशवां प्रायश्चित्त दे दिया जाता है।[1]

(२०) साम्भोगिक होने पर भी साधु साध्वी एक दूसरे से चौदह प्रकार की वैयावृत्य नहीं करवा सकते, किन्तु कोई वैयावृत्य करने वाला न हो तो करवा भी सकते हैं।[2]

इस प्रकार व्यवहार सूत्र २।६से१७ में रोग के कारण, बृहत्कल्प सूत्र ४।१८से२० में धर्मविनय का लाभ और व्यवहार सूत्र ८।११ में शय्या की दुर्लभता तथा बृहत्कल्प ४।२६

---

१. अणवट्ठप्पं भिक्खुं अगिहिभूयं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए। अणवट्ठप्पं भिक्खुं गिहिभूयं कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए।

पारंचियं भिक्खुं अगिहिभूयं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए। पारंचियं भिक्खुं गिहिभूयं कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए।

अणवट्ठप्पं भिक्खुं अगिहिभूयं वा गिहिभूयं वा कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए, जहा तस्स गणस्स पत्तियं सिया।

पारंचियं भिक्खुं अगिहिभूयं वा गिहिभूयं वा कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए, जहा तस्स गणस्स पत्तियं सिया॥

—व्यवहार सूत्र २।१८से२३॥

२. जे निग्गंथा य निग्गंथीओ य संभोइया सिया, नो एहं कप्पइ अन्नमन्नेणं वेयावच्चं कारवेत्तए। नत्थि याइ यहं केइ वेयावच्चकरे, एवं एहं कप्पइ अन्नमन्नेणं वेयावच्चं कारवेत्तए॥

मे परिहारी की निर्बलावस्था में उसे आहार देना आदि अनेकों अपवाद द्रव्य क्षेत्र काल और भावानुरूप समझ लेने चाहियें ॥

इन अपवादो के पाञ्च प्रकार के प्रायश्चित्त इस प्रकार हैं–

(१) यदि शुद्धरूप से अपवाद का सेवन किया गया हो तो उसे केवल प्रथमाङ्क आलोचना प्रायश्चित्त होता है परन्तु उस साधक को जो परिणामी-गीतार्थ हो, कृतयोगी हो और उस ने वह अपवाद पूर्ण यत्ना से सेवन किया हो।[1]

(२) अपवाद-सेवन का मिथ्यादुष्कृत अर्थात् यह मेरे से भूल हुई द्वितीयाङ्क प्रतिक्रमण-प्रायश्चित्त होता है; यह उसे आता है जो परिणमी-गीतार्थ हो, कृतयोगी हो परन्तु अपवाद का पूर्ण यत्ना से सेवन न कर सका हो।[2]

(३) अपवाद का तृतीयाङ्क 'तदुभय' प्रायश्चित्त उसे

१. (क) भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म पर-पासंड-पडिम उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्च पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, नत्थि णं तस्स तप्पत्तियं केइ छेए वा परिहारे वा नन्नत्थ एगाए आलोयणाए ॥

—व्यवहार सूत्र १।३२॥

(ख) निग्गथं च णं राओ वा वियाले वा दीह-पिट्ठो लूसेज्जा; इत्थी वा पुरिसस्स ओमज्जेज्जा, पुरिसो वा इत्थीए ओमज्जेज्जा। एव से कप्पइ, एव से चिट्ठइ, परिहारं च से न पाउणइ—एस कप्पे थेर-कप्पियाणं; एवं से नो चिट्ठइ, परिहारं च णो पाउणइ—एस कप्पे जिण-कप्पियाणं॥

—व्यवहार सूत्र ५।२१॥

२. छव्विहे पडिक्कमणे पण्णत्ते तं जहा—उच्चार-पडिक्कमणे, पासवण-पडिक्कमणे, इत्तरिए, आवकहिए, जंकिंचि-मिच्छा, सोमणंइए॥

—ठाणांग सूत्र ६।११६॥

आता है जो परिणामी-गीतार्थ हो, कृतयोगी हो परन्तु अपवाद का सेवन यत्ना से न कर सका हो।[1]

(४) अपवाद का छट्ठा 'तप' प्रायश्चित्त उसे आता है जो परिणामी-गीतार्थ तो हो परन्तु जो कृतयोगी न हो और उसने यत्नारहित अपवाद का सेवन किया हो।[2]

(५) अपवाद-सेवन का सातवां 'छेद' प्रायश्चित्त उसे आता है जो न गीतार्थ है, न कृतयोगी है और न ही उसने यत्ना से अपवाद का सेवन किया है।[3]

इस प्रकार, ज्ञान दर्शन एवं चारित्र के लाभ विना तथा शारीरिक कारण विना, जिस में आत्म-विराधना होने की

---

१. (क) भिक्खू य अन्नयरं अकिच्च-ट्ठाणं सेवित्ता इच्छेज्जा आलोएत्तए, जत्थेव अप्पणो आयरिय-उवज्झाए पासेज्जा, तस्सन्तियं आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, निंदेज्जा, गरहेजा विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जेज्जा ॥

—व्यवहार सूत्र १।३४॥

(ख) सव्वेसु वि बीय-पए, दंसण-नाण-चरणावराहेसु।
आउत्तस्स तदुभयं, सहसक्काराइणा चेव ॥

—जीतकल्प सूत्र १५॥

२. निग्गंथिं च णं गिलायमाणिं माया वा भगिणी वा धूया वा पलिस्सएज्जा, तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ॥ —बृहत्कल्प सूत्र ४।६॥

३. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म पासत्थ-विहारं विहरेज्जा से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, अत्थि याइं त्थ सेसे, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवट्ठाएज्जा ॥

—व्यवहार सूत्र १।२७॥

कोई आशंका नही ऐसे निष्कारण जो अपवाद का सेवन करते है उन शिथिलाचारी अतिपरिणामी साधको को 'छेद' प्रायश्चित्त आता है जैसे कि—

१. उवस्सयस्स अंतोवगडाए सुरा-वियड-कुंभे वा सोवीरय-वियड-कुंभे वा उवनिक्खित्ते सिया, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए। हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगराय वं दुरायं वा वत्थए, नो से कप्पइ परं एगरायाओ व दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा॥

उवस्सयस्स अंतोवगडाए सीओदग-वियडकुम्भे वा उसिणोदग-वियडकुंभे वा उवनिक्खित्ते सिया, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए। हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए, नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा॥

—बृहत्कल्प सूत्र २।४,५॥

किसी मकान मे सुरा, सिरका एवं प्रासुक ठंडे तथा गरम जल के घडे रखे हुए हो, साधु साध्वी उस मकान मे अल्प-काल भी न ठहरे, यदि कही पर भी कोई अन्य मकान न मिले तो एक रात्रि अथवा दो रात्रि के लिये उसी मकान मे ठहरा जा सकता है इस से अधिक नही, जो साधु साध्वी एक दो रात्री से अधिक ठहरता है तो उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है॥

२. उवस्सयस्स अंतोवगडाए सव्वराइए जोई झियाएज्जा, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए। हुरत्था य उवस्सयं

पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए, नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए । जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥

उवस्सयस्स अंतोवगडाए सव्वराइए पईवे दिप्पेज्जा, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालदमवि वत्थए । हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए, नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए । जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥

—बृहत्कल्प सूत्र २।६,७॥

जिस मकान में रात्रिभर अग्नि जलती रहे अथवा अग्नि-प्रदीप प्रकाश करता रहे तो साधु साध्वी उस मकान में अल्प समय के लिये भी न ठहरे, यदि कहीं पर भी अन्य मकान न मिले तो उसी मकान में एक रात्रि, (यदि थकान अधिक हुई हो तो) दो रात्रि तक ठहर सकते हैं, इस से अधिक रहना उन्हें नहीं कल्पता है । जो कोई साधु साध्वी इस से अधिक समय के लिये उस मकान में ठहरता है तो उसे उतने ही काल का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

३. बहवे पारिहारिया बहवे अपारिहारिया इच्छेज्जा एगयओ अभिन्न-सेज्जं वा अभिन्न-निसीहियं वा चेएत्तए । नो से कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता एगयओ अभिन्न-सेज्जं व अभिन्न निसीहियं वा चेएत्तए, कप्पइ एहं थेरे आपुच्छित्ता एगयओ अभिन्न-सेज्जं वा अभिन्न-निसीहियं वा चेएत्तए । थेरा य एहं से वियरेज्जा एव एहं कप्पइ एगयओ अभिन्न-सेज्जं वा अभिन्न-निसीहियं वा वा चेएत्तए, थेरा य एहं से नो वियरेज्जा, एव एहं नो कप्पइ एगयओ अभिन्न-

सेज्जं वा अभिन्न-निसीहियं वा चेएत्तए। जो णं थेरेहिं अविइण्णे अभिन्न-सेज्जं वा अभिन्न-निसीहियं वा चेएइ, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा॥

—व्यवहार सूत्र ३।२१॥

बहुत से प्रायश्चित्त वाले साधक और बहुत से बिना प्रायश्चित्त के साधक, किसी प्रकार की भिन्नता रहित, एक मकान मे रहना और एक कमरे में आसन लगाना चाहे तो अपने स्थविर से पूछ कर एव आज्ञा मिल जाने पर ऐसा करना उन्हे कल्पता है। यदि स्थविर भगवन्त आज्ञा प्रदान न करे तो ऐसा करना नही कल्पता। जो साधक स्थविरों की आज्ञा बिना जितने दिन तक किसी प्रकार की भिन्नता से रहित होकर उक्त प्रकार एक स्थान मे रहे तो उन्हे उतने ही दिन का दीक्षाछेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है॥

४. परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा। थेरा य से सरेज्जा कप्पइ से एगराइयाए पडिमाए जण्णं जण्णं दिसं अन्ने साहम्मिया विहरंति तण्णं तण्णं दिसं उवलित्तए। नो से कप्पइ तत्थ विहार-वत्तियं वत्थए, कप्पइ से तत्थ कारण-वत्तियं वत्थए। तंसि च णं कारणंसि णिट्ठियंसि परो वएज्जा 'वसाहि अज्जो! एगरायं वा दुरायं वा' एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए; नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जं तत्थ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वसइ, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा॥

—व्यवहार सूत्र ३।२२॥

परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा। थेरा य नो सरेज्जा, कप्पइ से निव्विसमाणस्स एगराइयाए पडिमाए···(२२)··· ·परिहारे वा॥

परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा। थेरा

य-से सरेज्जा वा नो वा सरेज्जा, कप्पइ से निव्विसमाणस्स एगराइयाए पडिमाए.........(जहा २२).........परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र १।२३,२४॥

किसी आचार्य के पास कोई तप-प्रायश्चित्त वाला साधु है, किसी अन्य स्थान पर कोई स्थविर आदि रोग-ग्रस्त हों, किसी अन्य साधु के भेजने का अवसर न हो, आचार्य महाराज उस प्रायश्चित्ती को अपना तपोऽनुष्ठान बीच में छोड़ कर, उस रुग्ण साधु की सेवा करने के लिये जाने की आज्ञा देवें, तब वह प्रायश्चित्ती, शक्ति हो तो तप करता हुआ और यदि शक्ति न हो तो अपना तपोऽनुष्ठान बीच में ही छोड़ कर, मार्ग में एक एक रात्रि ठहरने की प्रतिज्ञा धारण करके जा सकता है। जिस जिस दिशा में अपने स्वधर्मी रहते हों, उन उन दिशाओं को स्पर्शते हुए उसे जाना चाहिये। वहां स्वधर्मी होने पर भी एक रात्रि से अधिक न ठहरे। यदि उसे पीड़ा आदि का कारण होजावे तो अधिक भी ठहरा जा सकता है। कारण के निवृत्त हो जाने पर नहीं ठहरा जाता। फिर भी वहां रहने वाले साधु महाराज एक दो रात्रि और ठहरने के लिये कहें, तो एक दो रात्रि पर्यन्त ठहरा जा सकता है परन्तु इस से अधिक नहीं, जो साधु एक दो रात्रि से अधिक जितने दिन वहां ठहरे उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

ऊपरोक्त प्रकरण में प्रायश्चित्ती को आज्ञा देते हुए यदि आचार्य महाराज उसे अपना तप छोड़ना न कहें, तो वह अपना तप करता हुआ ही जाए। कारण के निवृत्त हो जाने पर और उन साधुओं के कहने पर एक दो रात्रि से अधिक न ठहरे, यदि ठहरे तो उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

सेज्जं वा अभिन्न-निसीहियं वा चेएत्तए। जो णं थेरेहिं अविइण्णे अभिन्न-सेज्जं वा अभिन्न-निसीहियं वा चेएइ, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा॥

—व्यवहार सूत्र १।२१॥

बहुत से प्रायश्चित्त वाले साधक और बहुत से बिना प्रायश्चित्त के साधक, किसी प्रकार की भिन्नता रहित, एक मकान मे रहना और एक कमरे मे आसन लगाना चाहे तो अपने स्थविर से पूछ कर एव आज्ञा मिल जाने पर ऐसा करना उन्हे कल्पता है। यदि स्थविर भगवन्त आज्ञा प्रदान न करे तो ऐसा करना नही कल्पता। जो साधक स्थविरो की आज्ञा बिना जितने दिन तक किसी प्रकार की भिन्नता से रहित होकर उक्त प्रकार एक स्थान में रहे तो उन्हे उतने ही दिन का दीक्षाछेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है॥

४. परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा। थेरा य से सरेज्जा कप्पइ से एगराइयाए पडिमाए जण्णं जण्णं दिसं अन्ने साहम्मिया विहरंति तण्णं तण्णं दिसं उवलित्तए। नो से कप्पइ तत्थ विहार-वत्तियं वत्थए, कप्पइ से तत्थ कारण-वत्तियं वत्थए। तंसि च णं कारणंसि णिट्ठियंसि परो वएज्जा 'वसाहि अज्जो! एगरायं वा दुरायं वा' एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए; नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जं तत्थ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वसइ, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा॥

—व्यवहार सूत्र १।२२॥

यसे सरेज्जा वा नो वा सरेज्जा, कप्पइ से निव्विसमाणस्स एगराइयाए पडिमाए .... (जहा २२) ....परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र १।२३,२४॥

किसी आचार्य के पास कोई तप-प्रायश्चित्त वाला साधु है, किसी अन्य स्थान पर कोई स्थविर आदि रोग-ग्रस्त हों, किसी अन्य साधु के भेजने का अवसर न हो, आचार्य महाराज उस प्रायश्चित्ती को अपना तपोऽनुष्ठान बीच में छोड़ कर, उस रुग्ण साधु की सेवा करने के लिये जाने की आज्ञा देवें, तब वह प्रायश्चित्ती, शक्ति हो तो तप करता हुआ और यदि शक्ति न हो तो अपना तपोऽनुष्ठान बीच में ही छोड़ कर, मार्ग में एक एक रात्रि ठहरने की प्रतिज्ञा धारण करके जा सकता है। जिस जिस दिशा में अपने स्वधर्मी रहते हों, उन उन दिशाओं को स्पर्शते हुए उसे जाना चाहिये। वहां स्वधर्मी होने पर भी एक रात्रि से अधिक न ठहरे। यदि उसे पीड़ा आदि का कारण होजावे तो अधिक भी ठहरा जा सकता है। कारण के निवृत्त हो जाने पर नहीं ठहरा जाता। फिर भी वहां रहने वाले साधु महाराज एक दो रात्रि और ठहरने के लिये कहें, तो एक दो रात्रि पर्यन्त ठहरा जा सकता है परन्तु इस से अधिक नहीं, जो साधु एक दो रात्रि से अधिक जितने दिन वहां ठहरे उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है॥

ऊपरोक्त प्रकरण में प्रायश्चित्ती को आज्ञा देते हुए यदि आचार्य महाराज उसे अपना तप छोड़ना न कहें, तो वह अपना तप करता हुआ ही जाए। कारण के निवृत्त हो जाने पर और उन साधुओं के कहने पर एक दो रात्रि से अधिक न ठहरे, यदि ठहरे तो उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है॥

ऊपरोक्त प्रसङ्ग मे आचार्य महाराज को पहले तो स्मरण था कि उसे अपना तपोऽनुष्ठान बीच मे छोड़ कर सेवा करने के लिये जाने को कहना है परन्तु अपने ज्ञान-ध्यान एव किसी से प्रश्नोत्तर के विचार मे होने के कारण उसे आज्ञा देते समय 'अपना तप छोड़ कर' कहना भूल गये तब भी उस प्राय-श्चित्ती को अपना तप करते हुए जाना चाहिये और बीच मे एक दो रात्रि से उपरान्त न ठहरे। यदि ठहरे तो उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

५. जे भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म एगल्ल-विहार-पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य नो संथरेज्जा से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंप-ज्जित्ताणं विहरित्तए, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेय-परिहारस्स उवट्ठाएज्जा ॥ —व्यवहार सूत्र १।२४॥

गणावच्छेइए य………(जहा २४)………उवट्ठाएज्जा। आयरिय-उवज्झाए य ………(जहा २४)…………उवट्ठाएज्जा।

—व्यवहार सूत्र १।२५,२६॥

ठाणाग सूत्र मे कथन किये गए * आठ गुणों से युक्त कोई साधु गण को छोड कर एक्कल्ल-विहार की प्रतिज्ञा को धारण करके विचरण कर रहा हो, यदि वह अकेला अपने सयम का निर्वाह न कर पा रहा हो और वह पुन. गण मे सम्मिलित

* अट्ठहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे अरिहइ एगल्लविहारपडिमं उवसपज्जित्ताणं विहरित्तए, तं जहा—(१) सड्ढि-पुरिसजाए, (२) सच्चे-पुरिसजाए, (३) मेहावी-पुरिसजाए, (४) बहुस्सुए-पुरिसजाए, (५) सत्तिम, (६) अप्पाहिगरणे, (७) धिइमं, (८) वीरियसंपन्ने ॥

—ठाणाग सूत्र ८।१॥

होकर विचरण करना चाहता हो तो उसे सर्वप्रथम आलोचना करवानी चाहिये, सामान्यरूप से लगे दोषों का प्रतिक्रमण= मिथ्यादुष्कृत तथा उस के विशिष्ट दोषों का तप-प्रायश्चित्त एवं छेद-प्रायश्चित्त देकर उसे संयम में उपस्थापन करना चाहिये ॥

इसी प्रकार गणावच्छेदक एवं आचार्य उपाध्याय अपनी गणावच्छेदक आदि पदवी को छोड़ कर एक्कल्ल-विहार-प्रतिमा को धारण कर विचरण कर रहे हों और उन से संयम का निर्वाह न हो पा रहा हो और पुनः गच्छ में आना चाहते हों तो उन्हें उक्त प्रकार आलोचना, प्रतिक्रमण, तप एवं छेद प्रायश्चित्त देकर संयम में उपस्थापन करना चाहिये ॥

६. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म पासत्थ-विहारं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, अत्थि या-इ त्थ सेसे, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवपट्ठाएज्जा ॥

भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म अहाच्छंद-विहारं—कुसील-विहारं—ओसन्न-विहारं—संसत्त-विहारं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चंपि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, अत्थि या-इ त्थ सेसे, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवपट्ठाएज्जा ॥

—व्यवहार सूत्र १।२७से३१॥

कोई साधु गण को छोड़ कर एक्कल्ल-विहार-प्रतिमा का वाहन करते हुए पार्श्वस्थ-विहारी होजाए और वह पुनः गण में आकर विचरण करना चाहता हो, यदि उस में संयम-पालन के भाव अवशिष्ट हैं तो उसे सर्वप्रथम आलोचना करवानी चाहिये, सामान्य-दोषों का प्रतिक्रमण (मिथ्या=

दुष्कृत), विशिष्ट दोषों का तप प्रायश्चित्त तथा छेद प्रायश्चित्त देकर उसे सयम मे उपप्रस्थापन करे ॥

इसी प्रकार गण को छोड़ कर कोई साधु यथाच्छन्द-विहारी, कुशील-विहारी, अवसन्न-विहारी तथा ससक्त-विहारी हो जाए और वह पुन. गच्छ मे आना चाहे, यदि उस मे सयम-पालन के भाव अवशिष्ट हो तो उसे आलोचना, प्रतिक्रमण, तप और दीक्षा-छेद के प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध करके संयम मे उपप्रस्थापन करना चाहिये ॥

७. भिक्खू य अहिगरणं कट्टु, तं अहिगरणं अविओसवेत्ता, इच्छेज्जा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, कप्पइ तस्स पञ्च-राइंदियाइं छेयं कट्टु परिणिव्वाविय २ तमेव गणं पडिनिज्जाएयव्वे सिया, जहा व तस्स गणस्स पत्तियं सिया ॥ —बृहत्कल्प सूत्र ५।५॥

कोई साधक क्लेश झगडा करके और उस क्लेश को उपशान्त किये विना अन्य सघाट्टक मे मिलना चाहे, तो उसे पाञ्च दिन के दीक्षा-छेद का प्रायश्चित्त देकर अपने पास रखना कल्पता है। इस प्रकार रख कर फिर उचितावसर पर कोमल वचनो द्वारा उसे समझा-बुझा कर वापिस उसी सघाटक में मिला देना चाहिये जहा से वह आया था जिससे गच्छ में प्रतीति बनी रहे ॥

८. से गामंसि वा, नगरंसि वा, निगमंसि वा, रायहाणिंसि वा एगवगडाए, एगदुवाराए, एगनिक्खमणपवेसाए, नो कप्पइ बहुणं अगडसुयाणं एगयओ वत्थए। अत्थि या-इ यहं केइ आयार-पकप्प-धरे, नत्थि यहं केइ छेए वा परिहारे वा; नत्थि या-इ यहं केइ आयार-पकप्प-धरे से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥

से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा अभिनि-वगडाए, अभिनि दुवाराए, अभिनि-निक्खमण-पवेसणाए, नो कप्पइ बहूणं अगड-सुयाणं एगयओ वत्थए। अत्थि या-इ एहं केइ आयार-पकप्प-धरे, नत्थि एहं केइ छेए वा परिहारे वा; नत्थि या-इ एहं केइ आयार-पकप्प-धरे, जे जत्तियं रयणिं संवसइ, सव्वेसिं तेसिं तप्पत्तियं छेए वा परिहारे वा॥ —व्यवहार सूत्र ६।४,५॥

छोटे ग्राम में, नगर में, बड़े नगर में और राजधानी में ऐसा मकान हो जिसका एक ही बड़ा कमरा हो, एक ही द्वार हो और आने जाने का भी एक ही मार्ग हो, ऐसे स्थान में बहुत से साधकों को, जो कि आचारांग, सूयगडांग, निशीथ आदि सूत्रों के पढ़े हुए नहीं, एकत्र रहना नहीं कल्पता, यदि उनमें कोई साधक, आचारांग निशीथ सूत्र का पढ़ा हुआ है तो उसे कोई छेद व तपादि प्रायश्चित्त नहीं आता, किन्तु यदि उनमें आचारांग निशीथ का पढ़ा हुआ कोई भी साधु नहीं है तो जितने दिन रहे उतने दिन का उन सब को दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है॥

इसी प्रकार बहुत कमरों, द्वारों और आने जाने के मार्गों वाले स्थान में बहुत से विना पढ़े साधक एकत्र रहें और उन में कोई साधक आचारांग निशीथ का पढ़ा हुआ न हो, तो उन सब को दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है॥

६. भिक्खू य इच्छेज्जा गणं धारित्तए, नो से कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता गणं धारित्तए, कप्पइ से थेरे आपुच्छित्ता गणं धारित्तए। थेरा य से वियरेज्जा, एवं से कप्पइ गणं धारित्तए; थेरा य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पइ गणं धारित्तए। जण्णं थेरेहिं अविदिण्णं गणं धारेइ, से सन्तरा छेओ वा परिहारो वा······॥ —व्यवहार सूत्र ३।२॥

किसी साधक को, कुछ साधकों को साथ लेकर, सङ्घाटक-पति बन कर विचरण करने की इच्छा हुई हो तो स्थविर भगवान् के विना पूछे उसे ऐसा करना नही कल्पता, उन्हें पूछ कर, और वे गणधारण कर विचरण करने की उपयोग पूर्वक आज्ञा प्रदान कर दें, तो उसे गणधारण कर विचरण करना कल्पता है; यदि स्थविर भगवान् आज्ञा न देवें, तो गणधारण कर विचरण करना नही कल्पता, यदि वह साधक स्थविरो की आज्ञा विना गणधारण करके विचरण करे तो उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद वा पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है॥

१०. बहवे साहम्मिया इच्छेज्जा एगयओ अभिन्न-चारियं चारए, णो ण्हं, कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता एगयओ अभिन्न-चारिय चारए कप्पइ ण्ह थेरे आपुच्छित्ता एगयओ अभिन्न-चारिय चारए। थेरा य से वियरेज्जा, एव ण्हं कप्पइ एगयओ अभिन्न-चारियं चारए, थेरा य से नो वियरेज्जा, एवं ण्हं नो कप्पइ एगयओ अभिन्नचारियं चारए। जे तत्थ थेरेहिं अविइण्णे एगयओ अभिन्न-चारियं चरंति, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ४।१६॥

बहुत से साधर्मिक साधक, अभिन्नरूप एकत्र होकर विचरण करना चाहें, तो उन्हे स्थविर भगवान् की आज्ञा लिये विना ऐसा करना नही कल्पता, हां, स्थविरो से पूछ कर और वे आज्ञा प्रदान कर देवे, तो अभिन्नरूप से एकत्र होकर विचरण करना कल्पता है, यदि वे आज्ञा न देवे तो नही कल्पता; जो साधक विना आज्ञा लिये अभिन्नरूप से एकत्र होकर जितने दिन विचरण करे तो उन्हे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ।।

११. गामाणुगामं दूइज्जमाणो भिक्खू य जं पुरओ कट्टु विहरइ, आहच्च विसुंभेज्जा, अत्थि या-इ त्थ अन्ने केइ उवसंपज्जणारिहे, से उवसंपज्जि-

यव्वे; नत्थि या-इ त्थ अन्ने केइ उपसंपज्जणारिहे, तस्स अप्पणो कप्पाए असमत्थाए कप्पइ से एगराइयाए पडिमाए जण्णं जण्णं दिसं अन्ने साहम्मिया विहरंति तण्णं तण्णं दिसं उवलित्तए । नो से कप्पइ तत्थ विहार-वत्तियं वत्थए, कप्पइ से तत्थ कारण-वत्तियं वत्थए । तंसि च णं कारणंसि णिट्ठियंसि परो वएज्जा 'वसाहि अज्जो! एगरायं वा दुरायं वा' एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए; नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए । जे तत्थ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वसइ, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥ —व्यवहार सूत्र ४।११॥

वासावासं पज्जोसविओ भिक्खू ... (जहा ११) ... छेए वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ४।१२॥

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधक जिस को अगवानी बना कर विचरण कर रहे थे, वे काल कर जाएं, तो उन साधकों में कोई साधक अगवान बनाने योग्य हो तो उसे अगवान बना कर विचरण करें, परन्तु उनमें कोई अगवान बनाने के योग्य न हो [अथवा वे सब साधक मिल कर किसी को अगवान न बना सके हों] तो जो साधक न मिला हो और न अपने कल्प=आचार के पालन में समर्थ हो, तो जिस को वह अपना अगवानी बनाना चाहता है उसके पास जाने के लिये मार्ग में एक-एक रात्रि ठहरने की प्रतिज्ञा को धारण करके जिस-जिस दिशा में उस के स्वधर्मी रहते हों उन क्षेत्रों को स्पर्शते हुए उसे जाना चाहिये । विहार के निमित्त वहां ठहरना नहीं कल्पता, हां—रोगादि कारण के निमित्त उसे ठहरना कल्पता है [उसको स्वयं रोग हो जाए, अथवा थकावट हो तथा वहां रहने वाले साधुओं को कोई कष्ट हो जाए जिसके लिए उस का वहां ठहरना आवश्यक हो] इन कारणों के निवृत्त हो जाने पर भी वहां रहने वाले साधु ऐसा कहें कि

हैं उसे ही यह पद दे दिया जाये। ऐसा कर देने के पश्चात् कोई ऐसी समस्या आ गई, जिसे वह नूतन, आचार्य न सुलभा सके और क्लेश उत्पन्न हो जाए तथा साधु उसे कहने लगें कि 'आप की दुष्ट पदवी है, आप को यह पद छोड़ देना चाहिये' तब वह [पद न छोड़े तो जितने दिन न छोड़े, उसे उतने ही दिन का छेद व तप प्रायश्चित्त आता है और यदि वह] उस पद को छोड़ देवे तो उसे कोई छेद व तप प्रायश्चित्त नहीं आता। किन्तु वे साधु नए आचार्य को पदवी छोड़ने के लिये तो न कहें, किन्तु उसे आचार्य-पने स्वीकार भी न करें, उसकी आज्ञा-प्रमाण विहरण न करें, तो जितने दिन उन्होंने नए आचार्य महाराज की आज्ञा-प्रमाण विहरण नहीं किया, उन सब को उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है॥

आचार्य उपाध्याय तीव्र-कर्मोदय के कारण, संयम छोड़ कर जा रहे हों और जाते हुए कह जाएं कि मेरे पश्चात् अमुक को आचार्य पद देना......शेष वर्णन उपरोक्तानुसार समझ लेना चाहिये॥

१४ पवत्तिणी य गिलायमाणी अन्नयरं वएज्जा 'मए णं अज्जा! काल-गयाए समाणीए अयं समुक्कसियव्वा'। सा य समुक्कसणारिहा, समुक्कसियव्वा; सा य नो समुक्कसणारिहा, नो समुक्कसियव्वा; अत्थि याइं थ अन्ना काइ समुक्कसणारिहा, सा चेव समुक्कसियव्वा। तंसि च णं समुक्किट्ठंसि परा वएज्जा 'दुस्समुक्किट्ठं ते अज्जे! निक्खिवाहि' ताए णं निक्खिवमाणाए नत्थि केइ छेए वा परिहारे वा। जा साहम्मिणीओ अहाकप्पेणं नो उट्ठाए विहरन्ति, सव्वासिं तासिं तप्पत्तियं छेए वा परिहारे वा॥ —व्यवहार सूत्र ५।१३।

पवत्तिणी य ओहायमाणी......(जहा १३ यावत् 'कालगयाए' स्थाने 'ओहावियाए')........छेए वा परिहारे वा॥ —व्यवहार सूत्र ५।१४

यव्वे; नत्थि या-इ त्थ अन्ने केइ उवसंपज्जणारिहे, तस्स अप्पणो कप्पाए असमत्थाए कप्पइ से एगराइयाए पडिमाए जण्णं जण्णं दिसं अन्ने साहम्मिया विहरंति तण्णं तण्णं दिसं उवलित्तए। नो से कप्पइ तत्थ विहार-वत्तियं वत्थए, कप्पइ से तत्थ कारण-वत्तियं वत्थए। तंसि च णं कारणंसि णिट्ठियंसि परो वएज्जा 'वसाहि अज्जो! एगरायं वा दुरायं वा' एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए; नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वसइ, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥ —व्यवहार सूत्र ४।११॥

वासावासं पज्जोसविओ भिक्खू... (जहा ११)...छेए वा परिहारे वा ॥
—व्यवहार सूत्र ४।१२॥

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधक जिस को अगवानी बना कर विचरण कर रहे थे, वे काल कर जाएं, तो उन साधकों में कोई साधक अगवान बनाने योग्य हो तो उसे अगवान बना कर विचरण करें, परन्तु उनमें कोई अगवान बनाने के योग्य न हो [अथवा वे सब साधक मिल कर किसी को अगवान न बना सके हों] तो जो साधक न मिला हो और न अपने कल्प=आचार के पालन में समर्थ हो, तो जिस को वह अपना अगवानी बनाना चाहता है उसके पास जाने के लिये मार्ग में एक-एक रात्रि ठहरने की प्रतिज्ञा को धारण करके जिस-जिस दिशा में उस के स्वधर्मी रहते हों उन क्षेत्रों को स्पर्शते हुए उसे जाना चाहिये। विहार के निमित्त वहां ठहरना नहीं कल्पता, हां—रोगादि कारण के निमित्त उसे ठहरना कल्पता है [उसको स्वयं रोग हो जाए, अथवा थकावट हो तथा वहां रहने वाले साधुओं को कोई कष्ट हो जाए जिसके लिए उस का वहां ठहरना आवश्यक हो] इन कारणों के निवृत्त हो जाने पर भी वहां रहने वाले साधु ऐसा कहें कि

'हे आर्य ! एक-दो रात्रि और ठहरो' तब भी एक या दो रात्रि और अधिक ठहरा जा सकता है किन्तु इस से उपरान्त नहीं, जो साधक इससे उपरान्त जितने दिन ठहरे उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

इसी प्रकार चातुर्मास काल में ठहरे साधकों का अगवानी साधक काल-धर्म को प्राप्त हो जाए तो उसे भी उपरोक्तानुसार करना कल्पता है जो मार्ग मे एक-दो रात्रि उपरान्त ठहरे तो उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

१२. गामाणुगामं दूइज्जमाणा निग्गथी य जं पुरओ काउं विहरइ सा आहच्च वीसुंभेज्जा, अत्थि याइत्थ काइ अन्ना उवसंपज्जणारिहा, सा उवसंपज्जियव्वा, नत्थि याइत्थ काइ अन्ना उवसपज्जणारिहा, तीसे य अप्पणो कप्पाए असमत्थे, कप्पइ सा एगराइयाए पडिमाए जण्णं जण्णं दिसं अन्नाओ साहम्मिणीओ विहरंति तण्णं तण्णं दिस उवलित्तए। नो सा कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए, कप्पइ सा तत्थ कारणवत्तियं वत्थए। तंसि च णं कारणंसि णिट्ठियंसि परो वएज्जा 'वसाहि अज्जे ! एगराय वा दुराय वा' एवं सा कप्पइ एगराय वा दुरायं वा वत्थए; नो सा कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जा तत्थ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वसइ, सा सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ५।११॥

वासावासं पज्जोसविया निग्गथी···(जहा ११) छेए वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ५।१२॥

साधु के प्रकरण मे जैसा अर्थ किया गया है उसी प्रकार यहा भी साध्वी के रूप मे समझ लेना चाहिये। विशेष इतना है कि 'नो कप्पइ निग्गथीए एगाणियाए होत्तए'—बृहत्कल्प सूत्र ५।१५॥ के अनुसार कल्पाचार मे समर्थ होते हुए भी और

समर्थ न होने पर भी दूसरी जगह जाते एकाकी न जावे, कम-से-कम दो मिल कर और मार्ग में एक-एक रात्रि ठहरने की प्रतिज्ञा धारण करके जावें ॥

१३. आयरिय-उवज्झाए गिलायमाणे अन्नयरं वएज्जा 'अज्जो! मए णं कालगयंसि समाणंसि अयं समुक्कसियव्वे। से य समुक्कसणारिहे, समुक्कसियव्वे; से य नो समुक्कसणारिहे, नो समुक्कसियव्वे। अत्थि याइत्थ अन्ने केइ समुक्कसणारिहे, से समुक्कसियव्वे; नत्थि याइत्थ अन्ने केइ समुक्कसणारिहे, सो चेव समुक्कसियव्वे। तंसि च णं समुक्किट्ठंसि परो वएज्जा 'दुस्समुक्किट्ठं ते अज्जो! निक्खिवाहि' तस्स णं णिक्खिवमाणस्स नत्थि केइ छेए वा परिहारे वा। जे साहम्मिया अहाकप्पेणं नो उट्ठाए विहरन्ति, सव्वेसिं तेसिं तप्पत्तियं छेए वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ४।१३॥

आयरिय-उवज्झाए ओहायमाणे······(जहा १३ णवरं 'कालगयंसि' स्थाने 'ओहावियंसि')······छेए वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ४।१४॥

आचार्य उपाध्याय महाराज रोग-ग्रस्त हों और उन्हें अपना आयुष्य समीप दिखाई दे रहा हो उस समय अन्य उपाध्याय तथा प्रवर्त्तक आदि को पास बुला कर वे कहें कि हे आर्यो! मेरे काल कर जाने पर इस पद पर अमुक को समुत्कर्षित करना ऐसा कह कर वे काल कर जाएं। तत्पश्चात् वे उपाध्याय प्रवर्तक आदि उस की परीक्षा करें; यदि वह इस पद के योग्य हो तो सब मिल कर उसे वह पद प्रदान कर देवें। किन्तु यदि वह इस पद के योग्य न हो तो उसे यह पद नहीं देना, गच्छ में कोई अन्य इस पद के योग्य दिखाई देता हो उसे यह पद प्रदान किया जावे। यदि अन्य कोई भी इस पद के योग्य दिखाई न दे तो जिसे आचार्य महाराज कह गए

है उसे ही यह पद दे दिया जावे। ऐसा कर देने के पश्चात् कोई ऐसी समस्या आ गई, जिसे वह नूतन आचार्य न सुलझा सके और क्लेश उत्पन्न हो जाए तथा साधु उसे कहने लगे कि 'आप की दुष्ट पदवी है, आप को यह पद छोड़ देना चाहिये' तब वह [पद न छोडे तो जितने दिन न छोडें, उसे उतने ही दिन का छेद व तप प्रायश्चित्त आता है और यदि वह] उस पद को छोड़ देवे तो उसे कोई छेद व तप प्रायश्चित्त नहीं आता। किन्तु वे साध नए आचार्य को पदवी छोडने के लिये तो न कहे, किन्तु उसे आचार्य-पने स्वीकार भी न करें, उसकी आज्ञा-प्रमाण विहरण न करे, तो जितने दिन उन्होंने नए आचार्य महाराज की आज्ञा-प्रमाण विहरण नहीं किया, उन सब को उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है॥

आचार्य उपाध्याय तीव्र-कर्मोदय के कारण, संयम छोड़ कर जा रहे हो और जाते हुए कह जाए कि मेरे पश्चात् अमुक को आचार्य पद देना······शेष वर्णन ऊपरोक्तानुसार समझ लेना चाहिये॥

१४. पवत्तिणी य गिलायमाणी अन्नयरं वएज्जा 'मए णं अज्जा! कालगयाए समाणीए अयं समुक्कसियव्वा'। सा य समुक्कसणारिहा, समुक्कसियव्वा, सा य नो समुक्कसणारिहा, नो समुक्कसियव्वा; नत्थि याइत्थ अन्ना काइ समुक्कसणारिहा, सा चेव समुक्कसियव्वा। तंसि च णं समुक्किट्ठंसि परा वएज्जा 'दुस्समुक्किट्ठं ते अज्जे! निक्खिवाहि' ताए णं निक्खिवमाणाए नत्थि केइ छेए वा परिहारे वा। जा साहम्मिणीया अहाकप्पेणं नो उट्ठाए विहरन्ति, सव्वासिं तासिं तप्पत्तियं छेए वा परिहारे वा॥ —व्यवहार सूत्र ५।१३॥

पवत्तिणी य ओहायमाणी······ (जहा १३ सूत्रं 'कालगयाए' स्थाने 'ओहावियाए')·········छेए वा परिहारे वा॥ —व्यवहार सूत्र ५।१४॥

साधुओं के प्रकरण के अनुसार यहाँ साध्वियों के रूप में भी अर्थ समझ लेना चाहिये ॥

१५. (क) आयरिय-उवज्झाए सरमाणे परं चउराय-पंचरायाओ कप्पागं भिक्खु नो उवट्ठावेइ। कप्पाए अत्थि याइत्थ से केइ माणणिज्जे कप्पाए, नत्थि से केइ छेए वा परिहारे वा; नत्थि याइत्थ से केइ माणणिज्जे कप्पाए, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ॥ —व्यवहार सूत्र ४।१५॥

आचार्य उपाध्याय महाराज का शिष्य, उट्ठाण करने योग्य हो गया अर्थात् दीक्षा के पश्चात् सात दिन व्यतीत हो गये और वह शिष्य प्रतिक्रमण साधु-सामाचारी से भली-भाँति परिचित हो गया, परन्तु जानते हुए भी उसे उपस्थान नहीं करावे, छः जीव-निकाय सुना कर पांच महाव्रत और छट्ठा व्रत आरोपण नहीं करावे, सात दिन से ऊपर चार व पाञ्च से भी अधिक दिन हो जावें तो आचार्य प्रायश्चित्त के अधिकारी हैं। कदाचित् उस शिष्य के पिता, उसके सेठ व राजा आदि की दीक्षा हो चुकी हो और प्रतिक्रमण आदि कुछ थोड़ा-सा शेष हो तो आचार्य को कोई प्रायश्चित्त नहीं आता क्योंकि उन्हें बड़ा बनाना उपयुक्त है, दस-पन्द्रह दिन तक ठहर सकते हैं किन्तु यदि कोई ऐसा माननीय दीक्षित व्यक्ति नहीं है तो आचार्य को, सात दिन से उपरान्त (पाञ्च दिन छोड़ कर) जितने दिन हुए हों, उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

(ख) आयरिय-उवज्झाए असरमाणे परं चउरायाओ कप्पागं···(जहा १५)··· छेए वा परिहारे वा ॥ —व्यवहार सूत्र ४।१६॥

आचार्य उपाध्याय महाराज प्रमाद के वश शिष्य को सातवें दिन उपस्थान कराना भूल गए तथा सात से ऊपर चार दिन

से भी अधिक दिन व्यतीत हो गए और कोई माननीय दीक्षित शिष्य भी नहीं है तो आचार्य को सात दिन से उपरान्त (चार दिन छोड कर) जितने दिन हुए हो, उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व तप प्रायश्चित्त आता है ।। [यदि चार दिन के अन्दर उपस्थान कराना याद आ जाए तो क्षन्तव्य]

(ग) आयरिय-उवज्झाए सरमाणे वा, असरमाणे वा परं दसरायकप्पाओ कप्पाग भिक्खुं नो उवट्ठावेइ। कप्पाए अत्थि याइत्थ से केइ माणणिज्जे कप्पाए, नत्थि से केइ छेए वा परिहारे वा; नत्थि याइत्थ से केइ माणणिज्जे कप्पाए, संवच्छरं तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा, उवज्झायत्तं वा, पवत्तित्तं वा, थेरत्तं वा, गणित्तं वा, गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारित्तए वा ॥

—व्यवहार सूत्र ४।१७॥

आचार्य उपाध्याय महाराज, स्मरण होने पर अथवा स्मरण न रहने पर उपस्थान न करावे और दस दिन से ऊपर हो जाए। यदि कोई माननीय पिता आदि दीक्षित व्यक्ति है तो आचार्य को कोई प्रायश्चित्त नही आता किन्तु कोई माननीय व्यक्ति नहीं, तो उस आचार्य को एक वर्ष तक आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी और गणावच्छेदक पद देना योग्य नहीं, उसे इन पदों के रूप में एक वर्ष तक अङ्गीकार करना किसी साधक को नहीं कल्पता ॥ [यदि दसवें दिन उपस्थान करा दिया जाए तो उपर्युक्त विधि से स्मरण होते पाच दिन और स्मरण न होवे तो छ दिन का छेद व तप प्रायश्चित्त आता है, एक वर्ष की पदवी नहीं जाती]

१६. (क) [१] भिक्खू य गणं अविक्खिवित्ता मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा, जावज्जीवाए तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा, उवज्झायत्तं वा, पवत्तित्तं वा, थेरत्तं वा, गणित्तं वा, गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारित्तए वा ॥

—व्यवहार सूत्र ३।१३॥

जो साधक गण को छोड़े विना (वेष में रहते हुए) मैथुन सेवन करे तो उसे आयु-पर्यन्त आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी और गणावच्छेदक की पदवी देना और उसे इस रूप में मानना साधकों को नहीं कल्पता ॥

[II] भिक्खू गणाओ अवक्कम्म मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा तिण्णि संवच्छराणि तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारित्तए वा। तिहिं संवच्छरेहिं वीइक्कंतेहिं चउत्थगंसि पट्ठियंसि, अवट्ठियंसि, ठियस्स, उवसंतस्स, उवरयस्स, पडिविरयस्स, निव्विकारस्स एवं से कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।१४॥

जो साधक गण (वेष) को छोड़ कर (साधुपने से पृथक् हो कर) मैथुन सेवन करे और इसके पश्चात् पुनः दीक्षा धारण करे तो उसमें योग्यता होने पर भी उसे तीन वर्ष तक आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी और गणावच्छेदक कोई पद देना और उसे उस रूप में मानना साधकों को नहीं कल्पता। हां—तीन वर्ष व्यतीत हो जाने पर चौथा वर्ष आरम्भ हो जाए और कुछ काल भी व्यतीत हो गया हो, उस समय यदि वह अपनी वृत्ति में स्थिर हो जाए, उसका मन उपशान्त हो गया हो, चञ्चलता रहित हो गया हो, मन समाधि में आजाए और किसी प्रकार का प्रकटरूप में विकार न रहे तो उसे आचार्य आदि का कोई भी पद देना और उसे उस रूप में मानना साधक लोगों को कल्पता है ॥

[III] गणावच्छेइए गणावच्छेइयत्तं अनिक्खिवित्ता मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा, जावज्जीवाए तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।१५॥

कोई गणावच्छेदक, गणावच्छेदक पद से त्याग-पत्र दिये विना वेप को छोड जाए, साधुपन से पृथक् हो कर मैथुन सेवन करे, पुन: दीक्षा धारण करले तो उसमें योग्यता होने पर भी, उसे गणावच्छेदक का पद अथवा आचार्य आदि का कोई भी पद आयु भर देना और उसे इस रूप में मानना साधकों को नही कल्पता ॥

[IV] गणावच्छेइए गणावच्छेइयत्तं निक्खिवित्ता मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा, तिण्णि संवच्छराणि··· · (जहा ३।१४)··· · धारित्तए वा ॥

—व्यवहार सूत्र ३।१६॥

कोई गणावच्छेदक २ पद से त्याग-पत्र दे कर और साधुका वेप छोड कर, साधुपने से पृथक् होकर मैथुन सेवन करे और इसके पश्चात् पुन. दीक्षा धारण करले तो उस में योग्यता होने पर भी उसे तीन वर्ष तक गणावच्छेदक अथवा आचार्य आदि कोई भी पद देना और उसे इस रूप मे मानना साधकों को नही कल्पता। हा—तीन वर्ष व्यतीत हो जाने पर और चतुर्थ आरम्भ होने पर यदि वह सयम मे स्थिर है, मन उसका उपशान्त है और चञ्चलता रहित है, उसकी वृत्ति समाधि वाली हो गयी है और उसमे बाह्य विकार का कोई चिह्न दिखाई नही देता तो गणावच्छेदक एव योग्यता होने पर आचार्य आदि कोई भी पद देना और उसे इस रूप में मानना साधक लोगो को कल्पता है॥

[V] आयरिय-उवज्झाए आयरिय-उवज्झायत्तं अनिक्खिवित्ता मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा, जावज्जीवाए तस्स···(जहा ३।१३)·· धारित्तए वा ॥

[VI] आयरिय-उवज्झाए आयरिय-उवज्झायत्तं निक्खिवित्ता मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स·····(जहा ३।१४)···धारित्तए वा ॥

—व्यवहार सूत्र ३।१७,१८॥

इसी प्रकार आचार्य उपाध्याय अपना पद छोड़े विना साधु-वेष का त्याग कर मैथुन सेवन करें और पुनः दीक्षा धारण करें तो उन में चाहे कितनी योग्यता हो और इस वार उनका मन कितना ही शान्त और समाधियुक्त क्यों न हो, किन्तु उसे आयुपर्यन्त आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी और गणावच्छेदक का कोई पद देना और उसे इस रूप में मानना साधकों को नहीं कल्पता ॥

यदि वे आचार्य उपाध्याय अपने आचार्य उपाध्याय पद को छोड़ कर, साधुवेष का त्याग करके, साधुपने से पृथक् होकर मैथुन सेवन करे और पुनः दीक्षा धारण करे, तब भी तीन वर्ष तक उसे कोई पद देना नहीं कल्पता। तीन वर्ष के पश्चात् चतुर्थ वर्ष में यदि उसका मन पूर्णतया स्थित, उपशान्त, उपरत, प्रतिविरत, और निर्विकार अवस्था वाला हो जाय तो उस समय उसकी योग्यता के अनुसार उसे आचार्य आदि कोई भी पद दिया जा सकता है, ऐसा करना साधक लोगों को कल्पता है ॥

(ख) [I] भिक्खू य गणाओ अवकम्म ओहायइ, तिण्णि संवच्छराणि ···(जहा ३।१४)···धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।१६॥

कोई साधक संयम एवं वेष को छोड़ जाए परन्तु पुनः दीक्षा धारण करे, उस में आचार्य आदि बनने की क्षमता होने पर भी उसे तीन वर्ष तक कोई पद देना नहीं कल्पता। चतुर्थ वर्ष में यदि उस का मन संयम में स्थिर हो जाए, संयम में आनन्द माने, असंयम के कार्यों को सर्वथा छोड़ने के लिये तत्पर रहे, संयम-बाह्य क्रियाओं से घोर-घृणा करे और संयम में रंग जाए, ओतप्रोत हो जाए, सरावोर हो जाए तो उसे योग्यता होने पर आचार्य आदि पद दिया जा सकता है ॥

[II] गणावच्छेइय, गणावच्छेइयत्तं अनिक्खिवित्ता ओहाएज्जा, जाव-ज्जीवाए तस्स·········(जहा ३।१३)·········धारित्तए वा ॥

—व्यवहार सूत्र ३।२०॥

कोई गणावच्छेदक, गणावच्छेदक के पद से त्याग-पत्र दिये विना साधुपने को छोड़ जाए और पुनः दीक्षा धारण करे तो उस मे योग्यता होने पर भी उसे आयु-पर्यन्त आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी और गणावच्छेदक बनाना और उसे इस रूप मे मानना साधको को नही कल्पता ॥

[III] गणावच्छेइए गणावच्छेइयत्त निक्खिवित्ता ओहाएज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स··· ··(जहा ३।१४)······धारित्तए वा ॥

—व्यवहार सूत्र ३।२१॥

कोई गणावच्छेदक अपने गणावच्छेदक पद का त्याग-पत्र अपने प्रवर्तक को देकर साधुपना छोड़ जाए परन्तु पुनः दीक्षा धारण कर ले, फिर भी तीन वर्ष तक उसे कोई पद नही देना चाहिये, चतुर्थ वर्ष मे यदि उस का मन संयम मे भली प्रकार रंग जाए तो गणावच्छेदक पद अथवा योग्यता होने पर आचार्य आदि कोई भी पद दिया जा सकता है ॥

[IV] आयरिय, आयरियत्तं अनिक्खिवित्ता ओहाएज्जा, जावज्जीवाए तस्स ·····(जहा ३।१३)··· ··धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।२२॥

आचार्य पद से त्याग-पत्र दिये विना यदि कोई आचार्य संयम को छोड़ जाए तो पुनः दीक्षित होने पर भी आयुपर्यन्त उसे कोई पद नही देना ॥

[V] आयरिय, आयरियत्तं निक्खिवित्ता ओहाएज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स······(जहा ३।१४)······धारित्तए वा ॥

—व्यवहार सूत्र ३।२३॥

यदि आचार्य, अपने आचार्य पद का संघ के समक्ष त्याग-पत्र देकर संयम को छोड़ जाए और पुनः दीक्षा अङ्गीकार करे तो योग्य होने पर तीन वर्ष तक तो उसे कोई पद देना नहीं कल्पता, हां—चतुर्थ वर्ष लग जाने के पर्याप्त समय पश्चात् यदि वह संयम में पूर्वोक्तानुसार ठीक हो तो योग्यतानुसार आचार्य आदि कोई भी पद दिया जा सकता है ॥

[VI] उवज्झाय, उवज्झायत्तं अनिक्खिवित्ता ओहाएज्जा, जावज्जीवाए तस्स…(जहा ३।१३)…धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।२४॥

[VII] उवज्झाय, उवज्झायत्तं निक्खिवित्ता ओहाएज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स…(जहा ३।१४)…धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।२५॥

अर्थ पूर्वोक्तानुसार समझ लेना चाहिए ॥

(ग) [I] भिक्खू य बहुस्सुए बब्भागमे, बहुसो बहु-आगाढागाढेसु कारणेसु माई, मुसावाई, असुई, पावजीवी जावज्जीवाए तस्स…(जहा ३।१३)…धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।२६॥

कोई साधक बहुश्रुत (आवश्यक और आचाराङ्ग सूत्र के उपरान्त जघन्य निशीथ, मध्यम व्यवहार-वृहत्कल्प और उत्कृष्ट ९ व १० पूर्व और आज-कल भगवती सूत्र का मर्म जानने वाला) हो, बहुत आगम और प्रायश्चित्तादि विधि का ज्ञाता हो, बहुत ही बड़े गाढावगाढ [जिसके बिना काम न चले] कारणों-प्रयोजनों के होने पर जो कपटाचरण करे, कपटसहित झूठ बोले (सत्य प्रतीत होने वाला झूठ बोले)। असुई=उत्सूत्र प्ररूपे, जानता हुआ भी सूत्रार्थ विपरीत करे, इस प्रकार ढोंग से अपना जीवन चलाए—ऐसे पापजीवी साधक को आयुपर्यन्त आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी और गणावच्छेदक

पदो मे से कोई भी पद देना और उसे इस रूप मे मानना साधकों को नही कल्पता ॥

[II] गणावच्छेइए बहुस्सुए, बब्भागमे, बहुसो बहु-आगाढागाढेसु कारणेसु माई, मुसावाई, असुई, पावजीवी जावज्जीवाए तस्स… (जहा ३।१३)…धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।२७॥

उपरोक्तानुसार कोई बहुश्रुत गणावच्छेदक, गाढावगाढ प्रसङ्ग पर भी कपटाचरण करके, माया सहित मृषावाद बोल कर, सूत्रो का अर्थ विपरीत करके अपना स्वार्थ साधता हुआ जीवन व्यतीत करे तो उसे आयु भर कोई पद नही आता ॥

[III] आयरिय बहुस्सुए बब्भागमे बहुसो बहु-आगाढागाढेसु कारणेसु माई, मुसावाई, असुई, पावजीवी जावज्जीवाए तस्स… (जहा ३।१३) …धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।२८॥

[IV] उवज्झाए बहुस्सुए बब्भागमे बहुसो बहु-आगाढागाढेसु कारणेसु माई, मुसावाई, असुई, पावजीवी जावज्जीवाए तस्स… (जहा ३।१३)… धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।२९॥

[V] बहवे भिक्खुणो बहुस्सुया बब्भागमा बहुसो बहु-आगाढागाढेसु कारणेसु माइणो, मुसावाइणो, असुइणो, पावजीविणो जावज्जीवाए तेसिं… ……(जहा ३।१३) …… धारित्तए वा ॥ —व्यवहार सूत्र ३।३०॥

बहुत से बहुश्रुत साधक, बहुमत मे होते हुए भी यदि वे उपर्युक्त दुर्गुणो से युक्त हो जाएं तब भी उनमे से किसी को भी आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी और गणावच्छेदक पदो मे से कोई भी पद उन्हे सम्पूर्ण आयु मे कभी भी देना, नही कल्पता ॥

[VI] बहवे गणावच्छेइया बहुस्सुया, बब्भागमा बहुसो बहु-

आगाढागाढेसु कारणेसु माइणो, मुसावाइणो, असुइणो, पावजीविणो जावज्जीवाए तेसिं········(जहा ३।१२)·········धारित्तए वा ॥

—व्यवहार सूत्र ३।२१॥

बहुत से गणावच्छेदक ऊपर अनुसार हो जाएँ फिर भी कोई परवाह नहीं करनी चाहिये, उन सब में से किसी को भी, कभी भी, कोई भी पद देना, साधकों को नहीं कल्पता ॥

VII. बहवे आयरिया बहुस्सुया, बब्भागमा बहुसो बहु-आगाढागाढेसु कारणेसु माइणो, मुसावाइणो, असुइणो, पावजीविणो जावज्जीवाए तेसिं·········(जहा ३।१२)·········उद्दिसित्तए वा धारित्तए वा ॥

व्यवहार सूत्र ३।२२॥

उपर्युक्त दुर्गुणों से युक्त बहुत से आचार्य भी क्यों न हो जाएँ, उन में से किसी को भी कभी भी आचार्य आदि बनाना और उसे उस रूप में मानना साधकों को नहीं कल्पता ॥

VIII. बहवे उवज्झाया बहुस्सुया, बब्भागमा बहुसो बहु-आगाढागाढेसु कारणेसु माइणो, मुसावाइणो, असुइणो, पावजीविणो जावज्जीवाए तेसिं······(जहा ३।१२)······उद्दिसित्तए वा धारित्तए वा ॥

—व्यवहार-सूत्र ३।२३॥

इसी प्रकार बहुत से उपाध्याय हो जाएँ तो उनमें से किसी को भी और कभी भी, किसी भी पद पर आरूढ करना और उसे वैसा मानना साधकों को नहीं कल्पता ॥

IX. बहवे भिक्खुणो, बहवे गणावच्छेइया, बहवे आयरिया, बहवे उवज्झाया बहुस्सुया बब्भागमा बहुसो बहु-आगाढागाढेसु कारणेसु माइणो, मुसावाइणो, असुइणो, पावजीविणो जावज्जीवाए तेसिं तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा, उवज्झायत्तं वा, पवत्तित्तं वा, थेरत्तं वा, गणित्तं वा, गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारित्तए वा ॥

—व्यवहार सूत्र ३।२४॥

उपर्युक्त दुर्गुणो से युक्त बहुत से साधु, बहुत से गणावच्छेदक बहुत से आचार्य और बहुत से उपाध्याय भले ही हो जाएं, उन सब मे से किसी को भी, कभी भी, आचार्य आदि कोई भी पद देना और उसे उस रूप में धारण करना सर्वज्ञ-कथित मार्ग के साधको और आराधको को नही कल्पता ॥

[उपरोक्त सभी प्रकरणों मे जो साधक विधान से विपरीत जितने दिन किसी को आचार्य आदि पद के रूप में अङ्गीकार और स्वीकार करे, उन्हे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त समझना चाहिए, यदि वे अपनी आत्म-शुद्धि के इच्छुक हो तो] ॥

८. मूल—

आकुट्टया पञ्चेन्द्रियवधे, दर्पेण मैथुने, उत्सन्नविहार इत्यादौ मूलं प्रायश्चितं, पुनर्व्रतारोपणमिति भावः ॥

(क) जान-बूझ कर द्वेष-भाव से और मार देने के इरादे से पञ्चेन्द्रिय जीव का वध कर देने पर।

(ख) दर्प पूर्वक मैथुन सेवन करने से।

(ग) और उत्सन्न-विहारी होने इत्यादि (उत्कृष्ट रूप से झूठ बोलने, चोरी करने, परिग्रह रखने आदि) अवस्थाओं में साधक को 'मूल' प्रायश्चित्त आता है अर्थात् द्वितीय-बार महाव्रत धारण करने होते हैं और उसको नई दीक्षा मानी जाती है। जैसे कि—

१. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म ओहावेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसपज्जित्ताणं विहरित्तए, नत्थि णं तस्स केइ छेए वा परिहारे वा, नन्नत्थ एगाए सेहोवट्ठावणियाए ॥ —व्यवहार सूत्र १।२३॥

कोई साधक गण को छोड़ कर असंयमी वृत्ति कर ले अथवा असंयमी वृत्ति न भी करे परन्तु आवेश में आकर साधु-वेष को छोड़ दे और गृहस्थ-वेष व अन्यतीर्थी के वेष को धारण कर ले परन्तु तत्काल सलिङ्ग में आकर पुनः उसी गण में सम्मिलित होना चाहे तो उसे कोई छेद व तप प्रायश्चित्त नहीं दिया जाता अपितु आठवां 'मूल' प्रायश्चित्त आता है, उसे द्वितीय-वार महाव्रत आरोपण करवा कर संयम में उपस्थापन किया जाता है ॥

[चारित्र एवं लिङ्ग के अतिरिक्त जो सम्यग्दर्शन से सर्वथा पतित हो जाए उसे भी आठवां 'मूल' प्रायश्चित्त आता है।]

२. संयम से भाव उतर जाने के कारण मेघ मुनि जी महाराज ने, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से द्वितीय-वार महाव्रतों को धारण किया[१] ॥

---

१. तएणं से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं संभारिय-पुव्व-जाइसरणे दुगुणाहिय-संवेगे आणंद-पुण्ण-मुहे हरिस-वसेणं धाराहय-कयंबगं पिव समूसिय-रोमकूवे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, नमंसइत्ता एवं वयासी—······इच्छामि णं भंते! इयाणिं सयमेव दोच्चंपि पव्वावियं सयमेव मुंडाविय जाव सयमेवं आयार-गोयरं जाया-माया-वत्तियं धम्ममाइक्खंतु।

तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ जाव जायामाया-वत्तियं धम्ममाइक्खइ—'एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं एवं चिट्ठि-यव्वं, एवं णिसीयव्वं एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं, उट्ठाय उट्ठाय पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमियव्वं।'

तए णं से मेहे समणस्स भगवओ महावीरस्स अयमेयारूवं धम्मियं

३. पुत्रोत्पत्ति का उपाय, गर्भस्तम्भन अथवा गर्भपात की विधि बता कर आहार लेने वाला साधक, उत्पादन के १६ वें मूलकर्म दोष का सेवी है और उसे आठवां 'मूल' प्रायश्चित्त आता है ॥*

९. अनवस्थाप्य—

स्वपक्षे परपक्षे वा अर्थादाने (स्तेने) निरपेक्षप्रहारिणि करादि-घातके वा इत्यादौ अनवस्थाप्यार्हं प्रायश्चित्तम् ॥

नवमें अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त में उसे गृहस्थ-वेष पहिना कर फिर नई दीक्षा दी जाती है। विना गृहस्थ बनाए जो संयम में स्थाप्य नहीं है उसे अनवस्थाप्य कहा जाता है। † यथा—

अणवट्ठप्पं भिक्खुं अगिहि-भूयं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए ॥

उवएस सम्मं पडिच्छइ पडिच्छइत्ता तह गच्छइ चिट्ठइ जाव संजमेणं संजमइ। तए णं से मेहे अणगारे जाए इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी॥
—ज्ञाता सूत्र १।१७१॥

प्रत्युत्पन्नानागतयो
* दुविह निमित्ते लोभे, गुरुगा मायाए मासिय गुरुयं।
वचनसंस्तव मूलकर्मणि मूलम्
सुहुमे वयणे लहुओ, संसे लहुगा य मूले च ॥
—बृहत्कल्प-भाष्य ५३६॥

† जिससे इतना तप कराया जाए कि उसमें स्वस्थान से उठने की भी शक्ति न रहे, दूसरे से कहे कि मुझे उठने के लिए सहारा दो, इस प्रकार कड़ी तपस्या करा कर जिसे नई दीक्षा दी जाती है उसे 'अनवस्थाप्य' प्रायश्चित्त कहते हैं।—वृद्धपरम्परा ॥

अणवट्ठप्पं भिक्खुं गिहि-भूयं कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए ॥
—व्यवहार सूत्र २।१८,१६॥

अर्थात् अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त वाले को विना गृहस्थ वनाए संयम में उपस्थापन करना गणावच्छेदक जी को नहीं कल्पता, गणावच्छेदक को उसे गृहस्थी वना कर फिर नई दीक्षा देनी चाहिये ॥

नवमें प्रायश्चित्त के अधिकारी—

तओ अणवट्ठप्पा पण्णत्ता तं जहा—साहम्मियाणं तेन्नं करेमाणे १, अन्न-धम्मियाणं तेन्नं करेमाणे २, हत्थतालं दलयमाणे ३॥

—ठाणांग सूत्र ३।४।१२॥, —बृहत्कल्प सूत्र ४।३॥

१. स्वधर्मी=स्वपक्ष के साधु साध्वी के भंडोपकरण ग्रन्थ पत्र, वस्त्र पात्र, शास्त्र तथा शिष्य की चोरी करने वाले—विना पूछे लेने वाले साधक को 'अनवस्थाप्य' नामक नवम प्रायश्चित्त आता है।

२. परधर्मी=परपक्ष अर्थात् अन्यतीर्थी साधु, अथवा स्वमत तथा परमत दोनों प्रकार के गृहस्थों[1] के भण्डोपकरण की चोरी करने वाले साधक को 'अनवस्थाप्य' प्रायश्चित्त आता है।

३. परस्पर में मारामारी और लड़ाई करने वाले [अथवा अष्टांग निमित्त की प्ररूपणा करने वाले[2]] साधक को नवम 'अनवस्थाप्य' प्रायश्चित्त आता है। (वताया हुआ ज्योतिष,

१. साधु-धर्म की अपेक्षा सब गृहस्थ पर-धर्म व पर-पक्ष में आते हैं।

२. वृहत्कल्प सूत्र पृष्ठ ४७॥ में पूज्य अमोलक ऋषि जी महाराज ॥

गणित आदि में त्रुटि रह जाने पर पूरा न उतरे तो साधुओं की और जिन-शासन की निन्दा होती है)

आठवें 'मूल' प्रायश्चित्त में दोष प्रकट नहीं होता और इस नवम अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त में दोष प्रकट रूप में (openly, in public) होता है इस लिए उसे लोगों के समक्ष गृहस्थ का वेष पहिना कर फिर नई दीक्षा दी जाती है। 'आदि' शब्द से प्रकट रूप मे झूठ बोलने वाले, कुशील सेवन करने वाले आदि प्रायश्चित्तियों को भी यह 'अनवस्थाप्य' नवम प्रायश्चित्त दिया जाता है॥

१०. पाराञ्चिक—

तीर्थंकरादीनां बहुश आशातनाकारिणि, नृपघातके, नृपाग्रमहिषीप्रतिसेवके, स्वपरपक्ष-कषाय-विषय-प्रदुष्टे, स्त्यानर्द्धि निद्रावति पाराञ्चिकप्रायश्चित्तम्। स स्वव्यक्तलिङ्गधारी जिनकल्पिवत् क्षेत्राद्बहिः स्थाप्यते द्वादशवर्षाणि, यदि प्रभावनां करोति तदा शीघ्रमेव प्रवेश्यते गच्छे शुद्धत्वात्॥

नई दीक्षा एवं गृहस्थ-वेष के अतिरिक्त जो दीर्घ समय (बारह मास उत्कृष्ट बारह वर्ष) तक विधि रूप से रहकर जो प्रायश्चित्त का पार पाता है उसे पाराञ्चिक नामक दसवां प्रायश्चित्त कहते हैं।

जो दोष, जितना प्रकट-रूप में होता है उसका प्रायश्चित्त भी उतना ही प्रकट-रूप मे दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाए तो अपने तथा बाहिर के लोगों मे यह अपवाद फैल जाए कि 'इन मे तो ऐसे ऐसे कुकर्म करने वाले भी छिपे बैठे हैं।'

इस प्रकार इस वेष की एवं जिन-शासन की निन्दा होती है। अतः जो दोष जितने अंश में प्रकट-रूप हो, उसका प्रायश्चित्त भी उतने ही प्रकटरूप में होना चाहिए। इसलिए दसवें प्रायश्चित्त का अधिकारी साधुवेष छोड़ देता है और गृहस्थ का कोई विशिष्ट वेष बनाकर (मस्तक पर चार अंगुल प्रमाण का वस्त्र बांध कर) बारह मास और उत्कृष्ट बारह वर्ष पर्यन्त साधु के सब नियमों का यथाविधि पालन करता हुआ और ग्रामानुग्राम विचरण करता हुआ लोगों के द्वारा अनादर अपमान को समभाव-पूर्वक सहन करता हुआ उतने समय का पार पाता है, उस अवधि में यदि वह जिन-शासन की प्रभावना करे तो समय घटा भी दिया जाता है, इस प्रकार समय पूरा करके वह नई दीक्षा धारण करता है॥

दसवें प्रायश्चित्त के अधिकारी—

तओ पारंचिया पण्णत्ता तंजहा—दुट्ठे पारंचिए १, पमत्ते पारंचिए २, अण्णमण्णं करेमाणे पारंचिए ३॥

—ठाणांग सूत्र ३।४।१२॥, —बृहत्कल्प सूत्र ४।२॥

१. दुष्ट दो प्रकार के होते हैं, कषायदुष्ट और विषय-दुष्ट। कषायदुष्ट के दो भेद – स्वपक्ष-कषायदुष्ट और परपक्ष-कषायदुष्ट। स्वपक्ष-कषायदुष्ट के भी पाञ्च भेद प्रतिपादन किये गए हैं—

पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे साहम्मियं पारंचियं करेमाणे णाइक्कमइ तंजहा—कुले वसइ कुलस्स भेयाए अब्भुट्ठेत्ता भवइ, गणस्स भेयाए अब्भुट्ठेत्ता भवइ, हिंसप्पेही, छिद्दप्पेही, अभिक्खणं अभिक्खणं पसिणाए तेणाइ पउत्ता भवइ॥ —ठाणांग सूत्र ५।१।१४॥

(क) जिस कुल में रह रहा है, उसी में फूट डलवा कर

गणित आदि में त्रुटि रह जाने पर पूरा न उतरे तो साधुओं की और जिन-शासन की निन्दा होती है)

आठवें 'मूल' प्रायश्चित्त मे दोष प्रकट नही होता और इस नवम अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त मे दोष प्रकट रूप में (openly, in public) होता है इस लिए उसे लोगों के समक्ष गृहस्थ का वेष पहिना कर फिर नई दीक्षा दी जाती है। 'आदि' शब्द से प्रकट रूप मे झूठ बोलने वाले, कुशील सेवन करने वाले आदि प्रायश्चित्तयों को भी यह 'अनवस्थाप्य' नवम प्रायश्चित्त दिया जाता है ॥

१०. पाराञ्चिक—

तीर्थंकरादीनां बहुश आशातनाकारिणि, नृपघातके, नृपाग्रमहिषीप्रतिसेवके, स्वपरपक्ष-कषाय-विषय-प्रदुष्टे, स्त्यानर्द्धि निद्रावति पाराञ्चिकप्रायश्चित्तम्। स त्वव्यक्तलिङ्गधारी जिनकल्पिवत् क्षेत्राद्‌बहिः स्थाप्यते द्वादशवर्षाणि, यदि प्रभावनां करोति तदा शीघ्रमेव प्रवेश्यते गच्छे शुद्धत्वात् ॥

नई दीक्षा एवं गृहस्थ-वेष के अतिरिक्त जो दीर्घ समय (बारह मास उत्कृष्ट बारह वर्ष) तक विधि रूप से रहकर जो प्रायश्चित्त का पार पाता है उसे पाराञ्चिक नामक दसवां प्रायश्चित्त कहते है।

जो दोष, जितना प्रकट-रूप मे होता है उसका प्रायश्चित्त भी उतना ही प्रकट-रूप मे दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाए तो अपने तथा बाहिर के लोगों में यह अपवाद फैल जाए कि 'इन मे तो ऐसे ऐसे कुकर्म करने वाले भी छिपे बैठे हैं।'

इस प्रकार इस वेष की एवं जिन-शासन की निन्दा होती है। अतः जो दोष जितने अंश में प्रकट-रूप हो, उसका प्रायश्चित्त भी उतने ही प्रकटरूप में होना चाहिए। इसलिए दसवें प्रायश्चित्त का अधिकारी साधुवेष छोड़ देता है और गृहस्थ का कोई विशिष्ट वेष बनाकर (मस्तक पर चार अंगुल प्रमाण का वस्त्र बांध कर) बारह मास और उत्कृष्ट बारह वर्ष पर्यन्त साधु के सब नियमों का यथाविधि पालन करता हुआ और ग्रामानुग्राम विचरण करता हुआ लोगों के द्वारा अनादर अपमान को समभाव-पूर्वक सहन करता हुआ उतने समय का पार पाता है, उस अवधि में यदि वह जिन-शासन की प्रभावना करे तो समय घटा भी दिया जाता है, इस प्रकार समय पूरा करके वह नई दीक्षा धारण करता है॥

दसवें प्रायश्चित्त के अधिकारी—

तओ पारंचिया पण्णत्ता तंजहा—दुट्ठे पारंचिए १, पमत्ते पारंचिए २, अण्णमण्णं करेमाणे पारंचिए ३॥

—ठाणांग सूत्र ३।४।१२॥, —बृहत्कल्प सूत्र ४।२॥

१. दुष्ट दो प्रकार के होते हैं, कषायदुष्ट और विषयदुष्ट। कषायदुष्ट के दो भेद—स्वपक्ष-कषायदुष्ट और परपक्ष-कषायदुष्ट। स्वपक्ष-कषायदुष्ट के भी पाञ्च भेद प्रतिपादन किये गए हैं—

पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे साहम्मियं पारंचियं करेमाणे णाइक्कमइ तंजहा—कुले वसइ कुलस्स भेयाए अब्भुट्ठेत्ता भवइ, गणस्स भेयाए अब्भुट्ठेत्ता भवइ, हिंसप्पेही, छिद्दप्पेही, अभिक्खणं अभिक्खणं पसिणाए तेणाइ पउत्ता भवइ॥ —ठाणांग सूत्र ५।१।१४॥

(क) जिस कुल में रह रहा है, उसी में फूट डलवा कर

और उन को परस्पर लडा कर स्वय तमाशा देखे और अपना उल्लू सीधा करे, क्लेश उत्पन्न कर कुछ साधकों को अपनी ओर मिला कर स्वय सघाटक-पति आदि बने।

(ख) जिस गण मे रह रहा है, उसी में फूट डाल कर उन्हे परस्पर लड़ा कर तमाशा देखे और अपना स्वार्थ सिद्ध करता हुआ आचार्य गणावच्छेदक आदि पद का अपहरण करे। गण मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र की वृद्धि करना तो एक ओर रहा अपितु गण को लडाता और उसमे फूट डालता हुआ पद का उपभोग करे।

(ग) जो गुरु और स्वधर्मी की घात करे तथा मरे हुए के दान्त आदि अङ्ग का क्रोध के वश होकर नाश करे।

(घ) जो कुल और गण के भेद के अवसरों की ताक में रहे और जिस साधु से उसका द्वेष हो उसके छिद्र देखता रहे, उसका अपयश करता रहे और उसकी निन्दा फैलाता रहे।

(ङ) गुरु को झूठा प्रमाणित करने के लिये उनसे वारम्बार प्रश्न करता रहे॥

इस प्रकार यह स्वपक्ष-कषायदुष्टता है। परपक्ष-कषाय दुष्टता, जो राजा आदि की घात करे॥

विषयदुष्ट के भी दो भेद होते है—स्वपक्ष-विषयदुष्ट, जो साध्वी का शील भङ्ग करे। परपक्ष-विषयदुष्ट, जो राजा की रानी आदि से कुशील सेवन करे—ये सब दुष्टता के भेद है॥

२. प्रमाद के दो भेद होते है—मदिरादि पदार्थ का सेवन कर परवश हो जाए। स्त्यानर्द्धि निद्रा के वशीभूत हो दिन में चिन्तन किया हुआ कार्य रात्रि मे कर डाले॥

३. साधु साधु के साथ और साध्वी साध्वी के साथ परस्पर विषय सेवन करे।

इन सब को दसवां 'पाराञ्चिक' प्रायश्चित्त लेना होता है॥

तीर्थंकर देव की, केवलि-प्ररूपित शास्त्र एवं जिन-शासन की बहुत बार आशातना करने वाला भी इस दसवें पाराञ्चिक प्रायश्चित्त का अनुष्ठान कर अपनी आत्मा को शुद्ध बना सकता है॥

कुछ गीतार्थों की धारणा है कि नवम प्रायश्चित्त उपाध्याय को तथा दशम पाराञ्चिक प्रायश्चित्त आचार्य को दिया जाता है।

किसी का कहना है कि ये दोनों प्रायश्चित्त, चौदहपूर्व का ज्ञान और प्रथम संहनन न होने से तप की अपेक्षा व्यवच्छेद हो चुके हैं, और कोई कहता है कि यह दसवां पाराञ्चिक प्रायश्चित्त पूर्णतया विच्छेद है।

किन्तु पृष्ठ ५७ में व्यवहार सूत्र २।२२,२३ के अनुसार अपवाद रूप में नवमें तथा दशमें प्रायश्चित्ती को आठवां मूल प्रायश्चित्त भी दे दिया जाता है॥



एवं सदयं दिज्जति जेणं सो संजमे थिरो होति।
न य सव्वहा न दिज्जति अणवत्थपसंगदोसातो॥

—व्यवहार सूत्र उद्देश १० भाष्यगाथा ३८०॥



तालिका

सामान्य प्रमाद की कोटियां	(१) अतिक्रम का प्रायश्चित्त 'आलोचना'।
	(२) व्यतिक्रम का प्रायश्चित्त 'प्रतिक्रमण' (मिथ्या-दुष्कृत देना)।
	(३) अतिचार व सामान्य प्रमाद के अनाचार का प्रायश्चित्त 'तदुभय'।
	(४) उपयोग भङ्ग के अनाचार का प्रायश्चित्त 'विवेक'।
	(५) केवल काया, केवल वचन व केवल मन के अनाचारो का प्रायश्चित्त 'व्युत्सर्ग'।
विशिष्ट प्रमाद की कोटियां	(६) विशिष्ट प्रमाद से उद्भूत अतिचार व अनाचारों का प्रायश्चित्त 'तप'।
	(७) कुछ जान-बूझ कर सेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'छेद'।
	(८) सर्वथा जान-बूझ कर आसेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'मूल'।
	(९) प्रकट रूप से जान-बूझ कर सेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'अनवस्थाप्य'।
	(१०) महान् अनर्थोत्पादक जान-बूझ कर सेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'पाराञ्चिक'॥

ये प्रायश्चित्त जिन २ मे हो सकते हैं वे इस प्रकार है—

पुलाक निर्ग्रन्थ मे छः प्रायश्चित्त—आलोचना १, प्रतिक्रमण २, तदुभय ३, विवेक ४, व्युत्सर्ग ५, और तप ६ हो सकते है।

वकुश और प्रतिसेवना-कुशील में दस ही प्रायश्चित्त हो सकते हैं। परन्तु जो जिन-कल्पी हैं उनमें आदि के आठ ही हो सकते हैं।

निर्ग्रन्थ में दो प्रायश्चित्त हो सकते हैं, आलोचना और विवेक।

स्नातक में केवल एक विवेक प्रायश्चित्त होता है ॥

सामायिक-चारित्री में छेद और मूल को छोड़ कर शेष आठ प्रायश्चित्त हो सकते हैं। किन्तु जो सामायिक-चारित्री जिन-कल्पी हैं उनमें आदिम छः प्रायश्चित्त ही हो सकते हैं।

छेदोपस्थापनीय-चारित्री में दस ही प्रायश्चित्त हो सकते हैं किन्तु जो छेदोपस्थापनीय जिनकल्पी हैं उनमें आदि के आठ प्रायश्चित्त ही हो सकते हैं।

परिहारविशुद्धि-चारित्री में आदि के आठ और जो परिहारविशुद्धि-चारित्री जिन-कल्पी है उसे छेद और मूल को छोड़ कर आदि के छः प्रायश्चित्त हो सकते हैं।

सूक्ष्मसम्पराय-चारित्री और यथाख्यात-चारित्री में दो प्रायश्चित्त हो सकते हैं—आलोचना और विवेक ॥



पायच्छित्ते असंतंमि,
चरित्तंपि ण वट्टती ।



चूलिका

प्रायश्चित्त दो प्रकार के होते हैं—कप्पिय और दप्पिय। आलोचना प्रायश्चित्त कप्पिय प्रायश्चित्त है[1], शेष नव प्रकार के प्रायश्चित्त सब-के-सब दप्पिय प्रायश्चित्त हैं[2],

---

१ कल्पनीय, आचरण करने योग्य कार्यों का आलोचना-प्रायश्चित्त, अतिक्रम की सम्भावना की अपेक्षा से है।

२. त पुण होज्जा सेविय दप्पेण अहव होज्ज कप्पेणं।
दप्पेण दसविहं तू इणमो वुच्छं समासेणं॥
दप्प य अकप्प निरालंब वियत्ते अपसत्थ वीसत्थो।
अपरिच्छ अकडजोगी अणाणुयावी य णिस्संको॥
—व्यवहार सूत्र उद्देश १० भाष्यगाथा ६३३, ६३४॥

—दर्पो निष्कारणं धावन-वल्गन-वीरयुद्धादिकरणं १। अकल्पोऽपरिणत-पृथ्वीकायादिग्रहणमगीतार्थानीतोपधि-शय्याहाराद्युपभोगश्च २। निरालम्बो ज्ञानाद्यालम्बनरहितप्रतिसेवनाको ३। वियत्तेति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात्त्यक्तकृत्य. सत्स्वपि स्वकृत्यं प्रतिसेव्य त्यक्तचारित्र इत्यर्थः ४। अप्रशस्तो बलवर्णादिनिमित्तं प्रतिसेवी। ५ विश्वस्तः स्वपक्षतः परपक्षतो वा निर्भयं प्राणातिपातादिसेवी ६। अपरीक्षी युक्तायुक्तपरीक्षाविकलः ७। अकृतयोगो अगीतार्थः। त्रीन् वारान कल्पमेषणीयं चापरिभाव्य प्रथमवेलायामपि यतस्ततोऽल्पानेषणीयमपि ग्राही ८। अननुतापी आगाढादेव कायानामुपद्रवेऽपि कृते पश्चात् अनुतापरहितः ९। निःशङ्को निर्दयः इहपरलोकशङ्कारहित इत्यर्थः १०॥

एवं दप्पेण भवे इणमन्नं कप्पियं मुणेयव्वं।
चउवीसई विहाणं तमहं वुच्छं समासेणं॥

विषयक होते है।[1] वियत्त-किच्च=व्यक्तकृत्य[2] अर्थात् कृतयोगी गीतार्थ द्वारा किये जाने वाले कार्य का प्रायश्चित्त, कप्पिय प्रायश्चित्त होता है। इस प्रकार कप्पिय और दप्पिय प्रायश्चित्तों मे दसो प्रकार के प्रायश्चित्त समाविष्ट है।

जिस साधक के तप-रूप दप्पिय प्रायश्चित्त वाले कई प्रतिसेवना दोप एकत्र हो जाए तो सामूहिक रूप से सब दोपो के प्रायश्चित्तो को मिलाकर जो एक प्रायश्चित्त कर दिया जाता है, उसे सजोयणा-प्रायश्चित्त कहते है।

किसी प्रायश्चित्त का अनुष्ठान करते हुए साधक नया दोप लगा बैठे तो उस दोप का प्रायश्चित्त पहले प्रायश्चित्त में बढ़ा दिया जाता है, इसको आरोपणा-प्रायश्चित्त कहा जाता है।

आलोचना करते समय यदि कपट का आचरण किया जाए तो इस कपट-आचरण का पृथग् रूप मे प्रायश्चित्त दिया जाता है जिसे कि पलिकुञ्चन-प्रायश्चित्त कहते है।[3]

शस्तेपु शुभेषु प्रयोजनेषु कर्तव्येषु समर्थो भवति। तत एषा कल्पिका प्रतिसेवना॥

१. तिविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तं जहा—णाण-पायच्छित्ते, दंसण-पायच्छित्ते, चरित्त-पायच्छित्ते॥ —ठाणाग सूत्र ३।४।१२॥

२. चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तं जहा—णाण-पायच्छित्ते, दंसण-पायच्छित्ते, चरित्त-पायच्छित्ते, वियत्तकिच्चे-पायच्छित्ते॥

—ठाणाग सूत्र ४।१।२३॥

३. चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा— पडिसेवणा-पायच्छित्ते १, सजोयणा-पायच्छित्ते २, आरोवणा-पायच्छित्ते ३, पलिउंचणा-पायच्छित्ते॥—ठाणाग सूत्र ४।१।२३॥

आरोवणा पंचविहा पण्णत्ता तंजहा—पट्ठविया (प्रस्थापिता

जो साधक इन प्रायश्चित्तों को अंगीकार एवं स्वीकार नहीं करता अपितु अपने दोषों को बढ़ाता ही चला जाता है, तो उस से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया जाता है जैसे कि —

पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गन्थे साहम्मियं संभोइयं, विसंभोइयं करेमाणे णाइक्कमइ तं जहा—सकिरिय-ट्ठाणं पडिसेवित्ता भवइ, पडिसेवित्ता णो आलोएइ, आलोएत्ता णो पट्ठिवेई, पट्ठिवेत्ता णो णिव्विसइ, जाइं इमाइं थेराणं ट्ठिइ-प्पकप्पाइं भवंति ताइं अइयंचिय अइयंचिय पडिसेवेइ से 'हन्द ![1] हं पडिसेवामि किं मे थेरा करिस्संति' ।

—ठाणांग सूत्र ५।१।१४॥

अर्थात् जो दोष का सेवन करता है, सेवन करके उसकी आलोचना नहीं करता, आलोचना करने पर गुरुजन जो प्रायश्चित्त देवें वह अङ्गीकार नहीं करता, अंगीकार करके भी उसे उतारता नहीं और स्थविर भगवन्तों ने जो मर्यादाएं बांधी है उन्हें वारम्वार तोड़ता है और कहता है कि 'हां ! मैं तो ऐसे ही करूँगा, देखूंगा स्थविर मेरा क्या बिगाड़ लेंगे' । ऐसे व्यक्ति के सम्भोग काट दिए जाते हैं।

इस प्रकार के जो प्रत्यनीक व्यक्ति हैं, उनके साथ सम्भोग नहीं रखे जाते जैसे कि—

अर्थात् शीघ्र तप करवाना), ठविया (स्थापिता अर्थात् स्थापन कर रखना), कसिणा (कृत्स्ना अर्थात् क्रोध-रहित तप करना वह पूर्णतप है), अकसिणा (अकृत्स्ना अर्थात् क्रोध सहित तप करना वह अपूर्ण तप है), हाडहडा (हृतहृता अर्थात् अवस्था एवं शक्ति देखकर दिया गया तप ॥

—ठाणांग सूत्र ५।२।१४॥

१. हन्द च गृहाणार्थे ॥८।२।१८१॥ —हेम-व्याकरण ॥

नवहिं ठाणेहिं समणे निग्गथे संभोइयं विसंभोइयं करेमाणे नाइक्कमइ तं जहा—आयरिय-पडिणीयं, उवज्झाय-पडिणीयं, थेरपडिणीयं, कुल-गण-संघपडिणीयं, णाण-दंसण-चरित्तपडिणीयं ॥ —ठाणांग सूत्र ९।१।

अर्थात् आचार्य द्वारा किये जाने वाले ज्ञान दर्शन और चारित्र की वृद्धि के कार्यों का विरोध करने वाले इसी प्रकार उपाध्याय, स्थविर के कार्यों का विरोध करने वाले, कुल गण और सघ द्वारा रत्नत्रय की वृद्धि के कार्यों का विरोध करने वाले, केवलि-प्ररूपित ज्ञान का विरोध करने वाले, दर्शन का विरोध करने वाले एव सर्वज्ञ-कथित मर्यादाओं का विरोध करने वाले—इन नव प्रकार के प्रत्यनीक साधकों के सम्भोग काट दिये जाते है ॥

आचार्य, उपाध्याय एव स्थविर के प्रत्यनीक को गुरु-प्रत्यनीक कहा जाता है[1], कुल गण एव सघ के प्रत्यनीक को समूह प्रत्यनीक कहा जाता है तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र के प्रत्यनीक को भाव-प्रत्यनीक कहा जाता है। ज्ञान=श्रुतप्रत्य-

१. गुरुं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तं जहा—आयरिय-पडिणीए, उवज्झाय-पडिणीए, थेर-पडिणीए। गइं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तं जहा—इहलोय-पडिणीए, परलोय-पडिणीए, दुहलोय-पडिणीए। समूहं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तं जहा—कुल-पडिणीए, गण-पडिणीए, संघ-पडिणीए। अणुकंपं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तं जहा—तवस्सी-पडिणीए, गिलाण-पडिणीए, सेह-पडिणीए। भावं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तं जहा—णाण-पडिणीए, दंसण-पडिणीए, चरित्त-पडिणीए। सुयं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तं जहा—सुत्त-पडिणीए, अत्थ-पडिणीए, तदुभय-पडिणीए ॥

—ठाणांग सूत्र ३।४।१८८।

नीक में सूत्र, अर्थ और तदुभय तीनों प्रकार के प्रत्यनीक माने जाते हैं।

तपस्वी, रोगी और शैक्ष का अनुकम्पा-प्रत्यनीक तथा इहलोक, परलोक एवं तदुभयलोक का गति-प्रत्यनीक—ये छः प्रकार के प्रत्यनीक तो अपनी हानि तक सीमित रहते हैं परन्तु उपरोक्त नव प्रकार के प्रत्यनीक तो अपनी हानि करते हुए गच्छ की भी हानि करते हैं अतः उनके साथ गच्छ के सम्भोग काट दिये जाते हैं ॥

उपरोक्त प्रसङ्गों में तो, प्रायश्चित्त न होने तक १२ प्रकार के सम्भोगों में से कुछ सम्भोग काट दिये जाते हैं किन्तु जो प्रायश्चित्ती आगमानुसार प्रायश्चित्त को अङ्गीकार ही न करे, उसे तो गच्छ-बाहिर ही किया जाता है अर्थात् उसके साथ गच्छ का कोई सम्भोग नहीं रहता जैसे कि कहा है—

भिक्खू य अहिगरणं कट्टु तं अहिगरणं अविओसवेत्ता—नो से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नो से कप्पइ बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नो से कप्पइ गामाणुगामं दूइज्जित्तए वा, गणाओ गणं संकमित्तए, वासावासं वा वत्थए। जत्थेव अप्पणो आयरिय-उवज्झायं पासेज्जा बहुस्सुयं वब्भागमं, कप्पइ से तस्सन्तिए आलोएत्तए, पडिक्कमित्तए, निंदित्तए, गरहित्तए, विउट्टित्तए, विसोहित्तए, अब्भुट्ठित्तए, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जित्तए। से य सुएणं पट्ठविए, आइयव्वे सिया; से य सुएणं नो पट्ठविए नो आइयव्वे सिया। से य सुएणं पट्ठविज्जमाणे नो आइयइ, से निज्जूहियव्वे सिया ॥ —बृहत्कल्प सूत्र ४।२५॥

कोई साधक किसी से क्लेश कर बैठे, जब तक वह क्लेश को शान्त करके क्षमा-याचना न कर ले, तब तक गोचरी को

जाना, पञ्चमी को जाना, स्वाध्याय करना, विहार करना, दूसरे साधुओ को अङ्गीकार करना और चातुर्मास-काल भी व्यतीत करना उसे नही कल्पता (जितने दिन व्यतीत करे उतने दिन का दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप) अपितु जहा उसके आचार्य, उपाध्याय, बहुश्रुत और प्रायश्चित्त-विधि के ज्ञाता हो, वहा जा कर आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दना, गर्हा, विउट्टण और आत्म-विशोधन करे, आगे के लिये ऐसा न करने का मन मे दृढ सङ्कल्प करे और किये हुए का यथायोग्य निर्जरारूप सूत्रानुसार प्रायश्चित्त अङ्गीकार करे। यदि प्रायश्चित्त पक्षपात के कारण, आगमानुसार न दिया जाए तो प्रायश्चित्त अङ्गीकार न करे, और जो साधक सूत्रानुसार दिये गए प्रायश्चित्त को अङ्गीकार न करे तो उसे विसम्भोगी घोषित करके गच्छ-बाहिर कर दिया जाना चाहिये ॥

जो तृतीयवार कपट का आचरण कर सभा में प्रायश्चित्त पा चुका हो और चतुर्थवार पुनः कपटाचरण करे तो उसे भी विसंभोगी गच्छ-बाहिर कर दिया जाता है —

तिहिं ठाणेहिं समणे निग्गन्थे साहम्मिये सभोइयं, विसंभोइयं करेमाणे णाइक्कमइ तं जहा—सइं वा दट्ठुं, सड्ढियस्स वा निसम्म तच्चं मोसं आउट्टइ, चउत्थं नो आउट्टइ ॥ —ठाणांग सूत्र ३।३।६॥

किसी ने दोष-स्थान सेवन किया, उसकी शुद्धि करने के हेतु उससे स्वीकार करवा कर प्रायश्चित्त देने के लिए उससे पूछा गया, उसने साफ इन्कार कर दिया, यदि प्रायश्चित्त देने वाले ने अपनी आंखों से उसका दोष-सेवन देखा है, तो उसे पूरा प्रमाण देकर प्रायश्चित्त देवे एव शुद्ध करे। दोष-सेवन का प्रायश्चित्त और कपट कर झूठ बोलने का प्रायश्चित्त

पृथक् पृथक् देकर और फिर दोनों को मिलाकर संजयोणा-प्रायश्चित्त दिया जाए। यदि उसे दोष सेवन करते हुए को स्वयं न देखा हो तो जिस विश्वास-पात्र ने अपनी आँखों देखा हो, उससे सुन कर उस दोषी को प्रायश्चित्त दिया जाए।

एक वार तो ऐसा कर दिया गया परन्तु उसने दूसरी वार फिर दोष का सेवन किया और पूछने पर भी फिर कपटाचरण कर भूठ वोला, तव भी उपरोक्त प्रकार से उसे प्रायश्चित्त दिया जाए।

यदि वह तीसरी वार भी ऐसा करे तो उपरोक्तानुसार उसे सभा के वीच संजोयणा-प्रायश्चित्त मिले।

यदि वह ढीठ चतुर्थ वार पुनः दोष-सेवन करे और पूछे जाने पर माया करके भूठ वोले तो पूरा प्रमाण मिल जाने पर उसे कोई प्रायश्चित्त देने की आवश्यकता नहीं अपितु उसे विसंभोगी कर गच्छ से वाहिर कर दिया जाता है।

कौन साधक अपने कपटाचरण को छिपाता है और कौन उसकी सम्यक् प्रकार आलोचना करता है इस विषय में सूत्र-कार प्रतिपादन करते हैं—

तिहिं ठाणेहिं मायी, मायं कट्टु णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा तं जहा—अकरिंसु वाहं, करेमि वाहं, करिस्सामि वाहं॥

—ठाणांग सूत्र ३।३।१॥

मायावी, कपटाचरण कर तीन कारणों से गुरु-साक्षी में आलोचना नहीं करे, मिथ्यादुष्कृत न दे, उसे बुरा न समझे

उससे घृणा न करे, आगे के लिए न करने का संकल्प न करे, और अतिचारों की शुद्धि कर यथायोग्य तप-प्रायश्चित्त ग्रहण न करे। जैसे कि—

(१) मैंने स्वयं यह कार्य किया, अब मैं इसकी कैसे निन्दा करूँ।

(२) यह कार्य मैं अब भी कर रहा हूँ, इसको मैं कैसे बुरा कहूँ।

(३) यह कार्य मैंने अब भी करना है, इसलिए इसका कैसे प्रायश्चित्त लूं।

तिहिं ठाणेहिं मायी, माय कट्टु णो आलोएज्जा णो पडिक्कमेज्जा जाव णो पडिवज्जेज्जा तं जहा—अकित्ती वा मे सिया, अवण्णे वा मे सिया, अविणए वा मे सिया।

(१) यदि मैं अपने पाप को प्रकट करूंगा तो मेरी अकीर्ति होगी।(२) मेरा अवर्णवाद होगा और (३) लोग मेरी पहिले जैसी विनय-भक्ति न करेंगे।

तिहिं ठाणेहिं मायी, माय कट्टु णो आलोएज्जा जाव णो पडिवज्जेज्जा त० कित्ती वा मे परिहाइस्सइ, जसो वा मे परिहाइस्सइ, पूयासक्कारे वा मे परिहाइस्सइ।

(१) मेरी बढ़ती हुई कीर्ति रुक जाएगी। (२) मेरे यश मे कमी हो जाएगी। (३) मेरी पूजा और सत्कार मे अन्तर आ जाएगा॥

तिहिं ठाणेहिं मायी, मायं कट्टु आलोएज्जा पडिक्कमेज्जा निंदेज्जा जाव पडिवज्जेज्जा तं जहा—मायिस्स णं अस्सिं लोगे गरहिए भवइ, उववाए गरहिए भवइ, आयाई गरहिया भवइ।

उत्तम जीव तीन कारणों से अपने कपटाचरण की गुरु की

साक्षी से आलोचना करते हैं, मिथ्यादुष्कृत देते हैं, उसे बुरा समझते हैं, उस कपटाचरण से घृणा करते हैं, आगे को न करने का दृढ सङ्कल्प मन में धारण करते हैं और लगे हुए अतिचारों की शुद्धि कर उस का यथा-योग्य प्रायश्चित्त ग्रहण करते हैं—

(१) यदि मैं अपना पाप गुप्त रखूंगा तो वह कभी गुप्त न रह सकेगा फिर लोगों में अधिक निन्दा का पात्र बनूंगा।

(२) माया-शल्य से मृत्यु पाकर दुर्गति में जाना पड़ेगा।

(३) वहाँ आयु समाप्त करके फिर मनुष्य लोक में अश्रेष्ठ कुलों में जन्म धारण करना पड़ेगा।

तिहिं ठाणेहिं मायी, मायं कट्टु आलोएज्ज जाव पडिवज्जेज्जा तं जहा— अमायिस्स णं अस्सिं लोगे पसत्थे भवइ, उववाए पसत्थे भवइ, आयाई पसत्थे भवइ।

(१) अपनी भूल मानने से और उसका पश्चात्ताप करने से इस लोक में प्रशंसा होती है कि 'धन्य है जो अपना जन्म सुधार रहा है।'

(२) आलोचना करने से जिनाज्ञा का आराधक होता है और मृत्यु के पश्चात् इन्द्र के सामानिक देव आदि की पदवी पाता है।

(३) वहां से आयु पूर्ण कर फिर श्रेष्ठ कुलों में जन्म धारण करके अपना कल्याण करता है।

तिहिं ठाणेहिं मायी, मायं कट्टु आलोएज्जा जाव पडिवज्जेज्जा तं जहा— णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए॥ —ठाणांग सूत्र ३।३।१॥

उत्तम जीव अपने ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की वृद्धि के लिये अपने कपटाचरण की आलोचना करके उसका प्रायश्चित्त अंगीकार करते हैं॥

परिशिष्ट

(१) पाञ्च व्यवहार।

पंचविहे ववहारे पण्णत्ते तं जहा— आगमे, सुए, आणा, धारणा, जीए। जहा से तत्थ आगमे सिया, आगमेणं ववहारे पट्ठवेज्जा; णो से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुए सिया, सुतेणं ववहारे पट्ठवेज्जा; णो से तत्थ सुये सिया, एवं जाव जहा से तत्थ जीए सिया, जीएणं ववहारे पट्ठवेज्जा। इच्चेएहिं पंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा, आगमेणं जाव जीएणं। जहा जहा से तत्थ आगमे जाव जीए, तहा तहा ववहारं पट्ठवेज्जा। से किमाहु भंते? आगमबलिया समणा निग्गंथा, इच्चेयं पंचविहं ववहारं जया जया जहिं जहिं, तया तया तहिं तहिं अणिस्सिओवस्सियं सम्मं ववहरेमाणे समणे निग्गंथे आणाए आराहए भवइ॥ —ठाणांग सूत्र ५।२।७॥

(१) केवल-ज्ञानी, मन पर्यव-ज्ञानी और चौदहपूर्वधारी से दसपूर्वधारी तक की आज्ञा के अनुसार किया गया व्यवहार आगम-व्यवहार कहलाता है जैसे कि केवल ज्ञानी सर्वज्ञ प्रभु नेमी नाथ जी तीर्थंकर देव की आज्ञा के होने पर श्री गज-सुकुमार जी महाराज ने दीक्षा लेते ही एक-दम भिक्षु की बारहवी पडिमा का वाहन किया; चौदह पूर्वधारी श्री भद्र-बाहु जी महाराज की आज्ञा से श्री स्थूलभद्र जी महाराज ने वेश्या के घर चातुर्मास किया इत्यादि।

(२) आगम-व्यवहारी के अभाव मे शास्त्रानुसार किया हुआ कार्य श्रुत-व्यवहार कहलाता है।

(३) आगम-व्यवहार और श्रुत-व्यवहार दोनों के अभाव

में आचार्य उपाध्याय जी महाराज की आज्ञानुसार किया जाने वाला कार्य आज्ञा-व्यवहार कहलाता है।

(४) जहाँ आज्ञा भी न आ सकती हो, वहाँ अपने पूर्वज आचार्य उपाध्याय आदि की कोई धारणा याद हो तो उसके अनुसार किया गया कार्य धारणा-व्यवहार कहलाता है।

(५) जिस किसी प्रकरण में श्रुत-व्यवहार का प्रसंग न हो, आज्ञा न पहुंच पाती हो और कोई धारणा भी स्मरण न हो, तो उस समय आगमों से अबाधित, गीतार्थों का सर्वसम्मत अथवा बहुमत निर्णय जो हो और उसके अनुरूप जो कार्य किया गया हो तो उसे जीत-व्यवहार कहते हैं॥

इन पांचों व्यवहारों में उत्तर से पूर्व पूर्व का व्यवहार बलवान है। आगम-व्यवहार सब व्यवहारों से बलिष्ठ है। आगम-व्यवहारी के समक्ष श्रुत नहीं देखा जाता, धारणा की आवश्यकता नहीं और बहुमत नहीं लिया जाता, जो आगमव्यवहारी प्रतिपादन करें वही प्रामाणिक है। आगम-व्यवहारी के विद्यमान न होने पर श्रुतव्यवहार बलवान है। आगम में आए हुए पाठ के विरुद्ध किसी आचार्य उपाध्याय की आज्ञा मान्य नहीं होती, वहां किसी की धारणा नहीं सुनी जाती और न किसी संगठन के बहुमत अथवा सर्वमत का भी कोई मूल्य होता है।

श्रुत में प्रसंग न होने पर उस विषय में आचार्य उपाध्याय आदि की आज्ञा सर्वोपरि होती है, विद्यमान आचार्य उपाध्याय जी की आज्ञा के सामने किसी पूर्वज आचार्य और उपाध्याय की धारणा का कोई महत्त्व नहीं होता, न ही वहां मत लेने की आवश्यकता है।

किसी समय यदि विद्यमान आचार्य उपाध्याय की आज्ञा न पहुंच पा रही हो, तो उस समय किसी पूर्वज आचार्य उपाध्याय की धारणा बलवती होती है, यहां भी मत लेने की आवश्यकता नहीं होती; जहां कोई धारण भी स्मरण न हो उस समय जीत-व्यवहार बलवान होता है और तब सर्व-सम्मत अथवा बहुमत से कार्य किया जाता है।

इस प्रकार 'अनिस्सोवस्सिय'=अनिश्रितोपश्रित अर्थात् राग द्वेष को छोड़कर किसी भी पक्षपात में न पड़ते हुए सम्यक् प्रकार से इन व्यवहारों के अनुसार कार्य करता हुआ ही कोई साधक, जिनाज्ञा का आराधक हो सकता है॥

(२) तीन प्रकार से आत्म-रक्षा।

तओ आयरक्खा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता भवइ १, तुसिणीओ वा सिया २, उट्ठित्ता वा आयाओ एगंतमवक्कमेज्जा ३॥ —ठाणांग सूत्र ३।३।४॥

(१) जिनके साथ रहा जा रहा है यदि वे विपरीत आचरण करते हों तो सर्वप्रथम उन्हें प्रेमपूर्वक धार्मिक उपदेश द्वारा समझा कर वर्जित करना चाहिए।

(२) इस प्रकार समझाने से यदि वे विपरीताचरण करना न छोड़ें तो मौन धारण कर लेना चाहिये, सम्भव है उसके मौन से प्रभावित होकर वे विपरीत आचरण करना छोड़ दें।

(३) यदि इतना होने पर भी वे विपरीताचरण को न छोड़ें तो उनके विपरीताचरण की अनुमोदना के पाप से अपने आप को बचाने के लिये उनसे पृथक् हो जाना चाहिये॥

(३) पांच कारण से गण को छोड़ना।

पंचहिं ठाणेहिं आयरिय-उवज्झायस्स गणावक्कमणे पण्णत्ते तं जहा—

आयरिय-उवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा नो सम्मं पउंजित्ता भवइ १, आयरिय-उवज्झाए गणंसि अहारायणियाए किइकम्मं वेणइयं नो सम्मं पउंजित्ता भवइ २, आयरिय-उवज्झाए गणंसि जे सुयपज्जवजाए धारिंति ते काले नो सम्ममणुपवादेत्ता भवइ ३, आयरिय-उवज्झाए गणंसि सगणियाए वा परगणियाए वा निग्गंथीए (सद्धिं) बहिलेस्से भवइ ४, मित्ते-णाइगणे वा से गणाओ अवक्कमेज्जा, तेसिं संगहोवग्गहट्ठयाए गणावक्कमणे पण्णत्ते ५ ॥

——ठाणांग सूत्र ५।२।१७॥

(१) जिस गच्छ के आचार्य उपाध्याय अपने गण में आज्ञा=स्पर्शना, धारणा=श्रद्धना और प्ररूपणा अथवा आज्ञा=विधिरूप आदेश, धारणा=निषेधरूप आदेश सम्यक् प्रकार नहीं देते और गण से पालन नहीं करवाते, जिसके मन में जो आए सो कर गुज़रे; उत्सूत्र प्ररूपणाएं चलती हों और विपरीताचरण किये जाते हों, कोई पूछने वाला न हो कोई रोकने वाला न हो, जहां सारणा वारणा न हो तो ऐसे गच्छ को छोड़ देना चाहिये।*

(२) जिस गच्छ के अधिकारिगण अपने गण में छोटों से वड़ों का आदर-मान और विनय-भक्ति नहीं करवाते, जिस गच्छ में छोटे वड़े का कोई लिहाज़ नहीं सर्वत्र आपा-धापी व्यापी हो तो ऐसे गच्छ को छोड़ देना चाहिये।

(३) जिस गच्छ के अधिकारिगण साधकों को शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करवाते तो उस गच्छ को छोड़ देना चाहिये।

(४) जिस गच्छ के अधिकारिगण साध्वियों से (स्त्रियों से) अनुचित सम्पर्क रखते हों तो उस गच्छ को छोड़ देना चाहिये।

---

* जहिं नत्थि सारणा वारणा य, पडिच्चोयणा या गच्छंमि।
सो उ अगच्छो गच्छो, मोत्तव्वो संजमत्थीहिं ॥

(५) किसी साधक का साथी एव सम्बन्धी (गुरुभाई आदि) गच्छ को छोड़ गया हो तो उस को सहायता देने के निमित्त उसे भी गच्छ छोड़ देना चाहिये ॥

(४) सात कारणों से संगठन की सुदृढता ।

आयरिय-उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त-संगहट्ठाणा पण्णत्ता तं जहा—आयरिय-उवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा सम्मं पउंजित्ता भवइ १, आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि अहारायणियाए किइकम्मं वेणइयं सम्मं पउंजित्ता भवइ २, आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि जे सुयपज्जवजाए धारेइ ते काले सम्ममणुपवाएत्ता भवइ ३, आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि गिलाण-सेह-वेयावच्चं सम्ममब्भुट्ठेत्ता भवइ ४, आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आपुच्छियाचारी यावि भवइ, णो अणापुच्छियचारी ५, आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि अणुप्पन्नाइं उवकरणाइं सम्म उप्पाइत्ता भवइ ६, आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि पुव्वुप्पन्नाइं उवकरणाइं सम्मं सारक्खित्ता संगोवित्ता भवइ ७॥

—ठाणांग सूत्र ७।४।

(१) जिस गच्छ के आचार्य उपाध्याय जी महाराज, गण में अपनी आज्ञा एव धारणा समुचित विधि से कार्यान्वित कराते है तो उस गण मे क्लेश नही होता और गण में प्रेम एवं उस का सगठन सुदृढ होता है ।

(२) जिस गच्छ के आचार्य उपाध्याय महाराज अपने गच्छ मे यथारत्नाधिक व्यवहार करवाते हैं, छोटे बडे का पूरा लिहाज रखते है और सब के गुण एव कार्य के अनुरूप समुचित स्थान एव पद-प्रदान करते रहते हैं तो उस गच्छ मे क्लेश नहीं होने पाता अपितु प्रेम की वृद्धि होती है और संगठन सुदृढ होता है ।

(३) जिस गण के आचार्य उपाध्याय अपने गण में आगमों

का पठन-पाठन करवाते रहते हैं तो उस गच्छ में शान्ति रहती है और कोई बात हो भी जाए तो शीघ्र शान्त हो जाती है तथा संगठन सुदृढ़ बना रहता है।

(४) जिस गच्छ के आचार्य-उपाध्याय गच्छ के नव-दीक्षित शैक्षकों की पूर्णतया सार-सम्हाल रखते है, आवश्यकता वालों की आवश्यकता पूरी करते हैं तथा रोगियों एवं वृद्धों की पूरी सेवा का प्रबन्ध करते हैं। तो गच्छ में कोई बात नहीं उठती और संगठन सुदृढ बना रहता है।

(५) जो आचार्य उपाध्याय गण में चारों ओर से सम्मति लेकर चलते है तो वातावरण शान्त और संगठन सुदृढ होता है।

(६) जो आचार्य उपाध्याय महाराज, साधकों के काम आने वाले उपकरणों को तय्यार करवाते रहते हैं, जिन से समय पर आवश्यकता वालों की आवश्यकता पूरी होती रहे, तो संगठन सुदृढ रहता है।

(७) जो उपकरण तैय्यार हो चुके हैं उन की सार-सम्हाल का सुप्रबन्ध जो आचार्य उपाध्याय महाराज करते रहते अथवा करवाते रहते हैं तो वे अपने गण का संगठन सुदृढ बनाते हैं॥

(५) **बारह प्रकार के सम्भोग** । सहयोग=मिल-वर्तन ।

उवही[१]-सुअ[२]-भत्तपाणे[३], अंजलीपग्गहेत्ति[४] य ।
दायणे[५] य निकाय[६] अ, अब्भुट्ठाणे[७] त्ति आवरे ॥१॥
किअकम्मस्स[८] य करणे, वेयावच्चकरणे[९] इअ ।
समोसरणं[१०] संनिसिज्जा[११] य, कहाए अ पबंधणे[१२] ॥२॥

किसी दुःखी का दुख निवारण करना हो, धर्म का लाभ होता हो अथवा किसी का जीवन सुधरता हो तो हर किसी से सम्पर्क रखा जा सकता है परन्तु इस शर्त पर कि उसके अपने जीवन को कोई क्षति न पहुचे। किन्तु यदि उपरोक्त कोई सेवा का प्रसग ही न हो, तो उन से सम्पर्क रखना चाहिये जिन का आचार व्यवहार एव विचार उससे मिलते हों, तभी उसे लाभ पहुच सकता है। विभिन्न आचार-विचार वालों के साथ सम्पर्क साधने से अपने सयमी-जीवन की हानि, ज्ञान-दर्शन-चारित्र की कमी होती है और वैमनस्य पल्ले पड़ता है। इस लिये पहले ही देख-भाल कर किसी के साथ उतना ही सम्बन्ध रखना चाहिये, मिल-वर्तन करना चाहिये जहा तक उस के ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि होती हो। ये मिल-वर्तन, सम्भोग बारह प्रकार से होते है, जो कि इस प्रकार है—

(१) उपधि—वस्त्र, पात्र आदि उपकरण आपस में लेना देना—इसे उपधि-सम्भोग कहते हैं।

(२) श्रुत—योग्य व्यक्तियो का विधिपूर्वक श्रुत की वाचना पृच्छना आदि करना श्रुत-सम्भोग कहलाता है।

(३) भक्तपान—परस्पर आहार पानी लेना देना और एक स्थान पर एकत्र होकर, मिल-बैठ कर भोजन करना भक्तपान-सम्भोग है।

(४) अञ्जलिप्रग्रहण-एक दूसरे को हाथ जोड़ कर सम्मान देना अञ्जलिप्रग्रहण-सम्भोग है।

(५) दायण—शिष्यो के आदान-प्रदान करने का नाम दायण-सम्भोग है।

(६) निकाय—आहार, वस्त्र, पात्र और शय्या आदि की निमन्त्रणा करने को निकाय-सम्भोग कहते है।

(७) अभ्युत्थान—सामने आते हुओं का, आसन त्यागते हुए खड़े होकर सम्मान करना अभ्युत्थान-सम्भोग है।

(८) कृतिकर्म—वन्दना करना कृतिकर्म-सम्भोग है।

(९) वैयावृत्त्य—आहार-पानी, वस्त्र-पात्र, पीठ-फलक आदि लाकर देना, उच्चार-प्रश्रवण परिष्ठापन करना और किसी क्लेश को शान्त करने में सहायता देना इत्यादि सब वैयावृत्त्य-सम्भोग माना जाता है।

(१०) समोसरण—एक मकान में ठहरना समोसरण-सम्भोग है।

(११) निषद्या—एक कमरे में आसन लगाना, निषद्या-सम्भोग है।

(१२) कथा-प्रबन्ध—एक स्थान बैठ कर परस्पर वार्तालाप, विचार-विनिमय करना, कथा-प्रबन्ध-सम्भोग होता है।

इन सम्भोगों की दस कोटियां होती हैं—

(१) प्रथम कोटि में सब-के-सब सम्भोग खुले रहते हैं।

(२) दूसरी कोटि में भक्तपान-सम्भोग, शिष्यप्रदान-सम्भोग और वन्दना का सम्भोग—इन तीनों को छोड़ कर शेष नव सम्भोग खुले रहते हैं।

(३) तीसरी कोटि में उपधि-सम्भोग और बन्द हो जाता है और चार को छोड़ कर शेष आठ खुले रहते हैं।

(४) चौथी कोटि में अञ्जलिप्रग्रहण सम्भोग और बन्द होकर कुल ५ बन्द होते हैं और सात खुले रहते हैं।

(५) पांचवीं कोटि में निकाय बन्द होकर कुल ६ बन्द और ६ खुले रहते हैं।

(६) छट्ठी कोटि मे अभ्युत्थान-सम्भोग बन्द होकर ७ बन्द और ५ खुले।

(७) सातवी कोटि मे, आहार-पानी उपधि और शिष्य-प्रदान से अवशिष्ट जो वैयावृत्य-सम्भोग है वह बन्द हो जाता है कुल ८ बन्द और ४ खुले रहते है।

(८) आठवी कोटि मे कथा-प्रबन्ध और बन्द हो जाता है, ९ बन्द और ३ खुले।

(९) नवमी कोटि में निषद्या और बन्द, १० बन्द और २ खुले।

(१०) दसवी कोटि मे समोसरण तथा श्रुत दो सम्भोग और बन्द होकर सब-के-सब सम्भोग बन्द हो जाते है और वह पूर्ण विसम्भोगी होकर गच्छ-बाहिर माना जाता है॥

इन कोटियो मे आए हुए सम्भोगो में से प्रत्येक के साक्षात्-सम्भोग और परम्परा-सम्भोग ये दो दो भेद और होते है। किसी प्रकार की त्रुटि न होने पर साक्षात् सम्भोग हुआ करता है और त्रुटि पड जाने पर परम्परा-सम्भोग, इस प्रकार कमी होते होते जब वह सम्भोग पूर्णतया दूषित हो जाता है तो परम्परा-सम्भोग भी नही रहता और तब वह पूर्ण विसम्भोगी माना जाता है॥

पात्रों की दृष्टि से छ कोटियाँ होती है, वे इस प्रकार है—

(१) स्वसम्भोगी—समनोज्ञ-स्वसम्भोगी के साथ १२ ही सम्भोग खुले रहते है। और अमनोज्ञ-स्वसम्भोगी के साथ कम-से-कम भक्तपान-सम्भोग, कृतिकर्म-सम्भोग और वैया-वृत्य-सम्भोग—ये तीन सम्भोग अवश्य खुले रहते हैं, और

अधिक-से-अधिक कथा-प्रबन्ध-सम्भोग को छोड़कर शेष ११ खुले रहते हैं।

(२) अन्यसम्भोगी—अन्यसम्भोगी के साथ भक्तपान सम्भोग, शिष्य-प्रदान सम्भोग और कृतिकर्म सम्भोग — ये तीन सम्भोग कम-से-कम बन्द रहते हैं।

(३) पासत्थादि पञ्चकुशील—इनसे उपरोक्त तीन तथा उपधि सम्भोग अञ्जालिप्रग्रहण, निकाय और अभ्युत्थान—इनके सामान्य-रूप को छोड़ कर विशिष्ट-रूप से ये चार बन्द होकर कुल ७ बन्द रहते हैं परन्तु यथाच्छन्द और चारित्र-कुशील के अतिरिक्त शेष तीन से श्रुतसम्भोग अपवाद-रूप से होता है किन्तु यथाच्छन्द से श्रुत-सम्भोग, निषद्या-सम्भोग और कथा-प्रबन्ध-सम्भोग—ये तीन और बन्द होकर कुल १० सम्भोग बन्द होते हैं और चारित्र-कुशील से समोसरण-सम्भोग और, कुल ११ सम्भोग बन्द होते हैं केवल अधिकरणोपशमनरूप वैयावृत्य-सम्भोग उचित सीमा तक खुला रहता है और शेष सब-के-सब बन्द होते हैं।

(४) विसम्भोगी—विसम्भोगी दो प्रकार के होते हैं एक प्रायश्चत्ती और दूसरा अप्रायश्चित्ती अर्थात् जो श्रुतानुसार प्रायश्चत्त न लेता हो और वह जो किसी दोष का सेवन करते हुए तीन बार प्रायश्चित्त ले चुका हो और फिर चतुर्थ बार उसी दोप का सेवन करके प्रायश्चित्त योग्य न होकर बाहिर किया गया हो, ऐसे अप्रायश्चित्तियों और प्रायश्चित्तियों, दोनों प्रकार के विसम्भोगियों से कोई सम्भोग नहीं होता। प्रायश्चित्ती, प्रायश्चित्त कर चुकने पर सम्भोग योग्य होता है।

(५) संयतीवर्ग—साध्वियों से, उत्सर्ग और अपवाद

विषयक वार्तालापरूप कथाप्रबन्ध-सम्भोग के अतिरिक्त और कोई सम्भोग नही होता।

(६) गृहस्थवर्ग—गृहस्थियों से, अपवादरूप वाचना को छोडकर, विधिपूर्वक पृच्छना आदि श्रुतसम्भोग के अतिरिक्त आरम्भ के १० सम्भोग नही होते, अर्थात् पृच्छनादि श्रुत-सम्भोग, निषद्या-सम्भोग, और वार्तालापादि कथा-प्रबन्ध-सम्भोग—ये तीन सम्भोग होते है। गृहस्थ-स्त्रियों से ये तीन भी नही होते। पुरुषों मे भी योग्य गृहस्थो से होते है। सामान्यतया भगवान् का आदेश है कि 'गिही सथवं न कुज्जा, कुज्जा साहूहि सथव'—दशवैकालिक सूत्र ८।५३॥ तथा जिन स्त्री-पुरुषो के ससर्ग से संयमी-जीवन और ज्ञान-ध्यान को क्षति पहुँचती हो उन नर-नारियों का सम्पर्क छोड़ देना चाहिये 'जेण पुण जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिण नियच्छइ। नर-नारिं पजहे सया तवस्सी, न य कोऊहल उवेइ स भिक्खू' ॥—उत्तराध्ययन सूत्र १५।६॥

कल्पानुसार किसी साधक का दु:ख निवारण करना हो और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि होती हो तथा धर्म-विनय का लाभ होता हो तो अपवादरूप से इन उपरोक्त सभी कोटियो के सम्भोगो मे हेर-फेर भी हो जाता है॥



अभिमत

"हम सुशील कैसे बनें ?"

यह सुन्दर कृति साधु-जीवन को उन्नत करने में बहुत ही उपयोगी और लाभप्रद है। कुछ ही पृष्ठ पढ़ने से हृदय, ऐसी बहुमूल्य कृति के लिये लेखक के श्रम को वार २ सराहने लगा। आज के युग में ऐसे पुस्तक-रत्नों की और भी अधिक आवश्यकता है। नवदीक्षित युवा मुनियों को तो इस से अनगिनत लाभ हो सकते हैं जो कि उन्हें संसार में पूज्य ही नहीं—आदर्श-मुनि भी सहज में ही बना सकते हैं। लेखक के पुनीत अथ च सराहनीय परिश्रम को यदि वे सार्थक करेंगे तो लेखक को ही नहीं, मुझे भी महान् हर्ष हुए विना न रहेगा। ऐसी उत्तम कृति को लिखने में महान् श्रम के लिये लेखक को पुनः पुनः धन्यवाद ॥

—चन्दन मुनि

पट्टी (अमृतसर)

पठनीय पुस्तकें



(१) गच्छायार पइण्णयं—

इस मे गच्छ के आचार व्यवहार पर प्रकाश डाला गया है।

(२) सधर्मि-परीक्षा—

इस के द्वारा सक्षेप में सधर्मी की पहचान करवाई गई है।

(३) हम सुशील कैसे बनें ?—

इस मे पञ्च-कुशील, पाञ्च अप्रशस्त तथा पाञ्च प्रशस्त भावनाओ का स्वरूप समझाया गया है।

(४) गीतार्थ स्वरूप—

गीतार्थ के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है।

(५) शान्ति-प्रकाश—

इस मे राग-द्वेष को दूर करने वाले और धैर्य शान्ति प्रदान करने वाले शत दोहे दिये गए हैं।